TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178746

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H88/T12R Accession No. G.H.830

Author ठाकुर, रवीन्द्रनाथ। Vol. ११

Title रवीन्द्र-साहित्य।

This book should be returned on or before the date last marked below.

रवीन्द्र-साहित्य

तीसरा भाग

सड़ककी बात
दालिया
त्याग
निशीथमें
मणिहीन
सुभा
सम्पादक
पुरानी कहानी
दुराशा
देन-लेन
कहानी
कहानियाँ

धन्यकुमार जैन

मूल्य सवा दो रुपया

रवीन्द्र-साहित्य

तीसरा भाग

अनुवादक
धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७

प्रकाशक :—धन्यकुमार जैन, 'हिन्दी-ग्रन्थागार'
पो-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता-७

मुद्रक :—हजारीलाल शर्मा
जनवाणी प्रेस ऐण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड
३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता

रवीन्द्र-साहित्य

तीसरा भाग

सड़ककी बात

मैं सड़क हूं। अहल्या जैसे मुनिके शापसे पत्थर हो गई थी ठीक वैसे ही, मैं भी शायद किसीके शापसे चिर-निद्रित सुदीर्घ अजगरकी भाँति बन-जंगल और पहाड़-पहाड़ियोंसे गुजरती हुई पेड़ोंकी छायाके नीचेसे और दूर तक फैले-हुए मैदानोंके ऊपरसे देश-देशान्तरोंको घेरती हुई बहुत दिनोंसे बेहोशीकी नींद सो रही हूं। जड़-निद्रामें पड़ी-पड़ी मैं अपार धीरजके साथ अपनी धूलमें लोटकर शापकी आखिरी घड़ियोंका इन्तजार कर रही हूं। मैं हमेशासे जहाँकी तहाँ स्थिर हूं, अविचल हूं; हमेशासे एक ही करवट सो रही हूं; मगर फिर भी मुझे पल-भरकी साता नहीं कि जरा आराम कर लूं। इतना भी सुख नहीं कि अपनी इस कड़ी और सूखी सेजपर एक भी मुलायम हरी घास या दूब उगा सकूं। इतनी भी फुरसत नहीं कि अपने सिरहानेके पास एक छोटेसे छोटा नीले रंगका बन-फूल ही खिला सकूं। मैं बोल नहीं सकती; पर अन्धेकी तरह सब-कुछ महसूस कर सकती हूं। दिन-रात पैरोंकी ध्वनि, सिर्फ पैरोंकी आहट सुना करती हूं।

मेरी इस गहरी जड़-निद्रामें लाखों चरणोंके शब्द दिन-रात दुःस्वप्नकी तरह घूमते रहते हैं। मैं चरणोंके स्पर्शसे उनके हृदयोंको पढ़ लेती हूं। मैं समझ जाती हूं, कौन घर जा रहा है, कौन परदेश जा रहा है, कौन कामसे जा रहा है, कौन आराम करने जा रहा है, कौन उत्सवमें जा रहा है और कौन श्मशानको जा रहा है। जिसके सुखकी घर-गृहस्थी है, स्नेहकी छाया है, वह हर कदमपर सुखकी तसवीर खींचता जाता है, आशाके बीज बोता जाता है। जान पड़ता है, जहाँ-जहाँ उसके पैर पड़े हैं वहाँ-वहाँ क्षण-भरमें मानो एक-एक लता अङ्कुरित और पुष्पित हो उठेगी। जिसके घर नहीं, आश्रय नहीं, उसके पदक्षेपमें न आशा है, न अर्थ है; उसके कदमोंमें न दायाँ है, न बायाँ है; उसके पैर कहते रहते हैं, 'मैं चलूं तो क्यों, और ठहरूं तो किस लिए ?' उसके कदमोंसे मेरी सूखी हुई धूल मानो और-भी सूख जाती है।

संसारकी कोई भी कहानी मैं पूरी नहीं सुन पाती। आज सैकड़ों-हजारों वर्षोंसे मैं लाखों-करोड़ों लोगोंकी कितनी हँसी, कितने गीत, कितनी बातें सुनती आई हूं; पर थोड़ी-सी सुन पाती हूं। बाकीकी सुननेके लिए जब कान लगाती हूं तब देखती हूं कि वह आदमी ही नहीं रहा! इस तरह न-जाने कितने युगोंकी कितनी टूटी-फूटी बातें और कितने बिखरे हुए गीत मेरी धूलके साथ धूल बन गये हैं; और धूल बनकर अब भी उड़ते रहते हैं, कौन कह कसता है!

वह सुनो, कोई गा रही है—"कहते-कहते कह नहीं पाई।"

ओह, ठहरो जरा, गीतको पूरा कर जाओ, पूरी बात तो सुन लेने दो मुझे। पर कहाँ ठहरी वह ? गाते-गाते न-जाने कहाँ चली गई ? आखिर तक सुन ही न पाई। बस, आज आधी रात तक उसकी पग-ध्वनि मेरे कानोंमें गूँजती रहेगी। मन-ही मन सोचूँगी, कौन थी वह ? कहाँ जा रही थी न-जाने ? जो बात कह नहीं पाई उसीको फिर कहने गई क्या ? अबकी बार जब फिर उससे भेंट होगी, वह जब मुँह उठाकर इसके मुँहकी तरफ ताकेगा, तब 'कहते-कहते' फिर 'कह नहीं पाई' तो ? तब उससे मुंह मोड़कर, सिर नीचा करके, बहुत धीरे-धीरे लौटते समय फिर अगर वह गाती जाय, 'कहते-कहते कह नहीं पाई' तो ?

समाप्ति और स्थायित्व शायद कहीं होगा, पर मुझे तो नहीं दिखाई देता। एक चरण-चिह्नको भी तो मैं ज्यादा देर तक थामकर नहीं रख सकती। मेरे ऊपर लगातार चरण-चिह्न पड़ रहे हैं; पर नये पाँव आकर पुराने चिह्नोंको पोंछ जाते हैं। जो चला जाता है वह तो पीछे कुछ छोड़ ही नहीं जाता। कदाचित् उसके सिरके बोझसे कुछ मिलता भी है तो हजारों चरणोंके तले लगातार कुचला जाकर कुछ ही देरमें वह धूलमें मिल जाता है। परन्तु एक बात अब भी देख रही हूँ, वह यह कि किसी-किसी महापुरुषके पुण्य-स्तूपके अन्दर ऐसा एक अमर बीज पड़ गया है जो धूलमें पड़कर भी अङ्कुरित और वर्द्धित होकर मेरे बगलमें स्थायीरूपसे विराज रहा है और पथिकोंको छाया प्रदान कर रहा है।

मैं किसीका भी लक्ष्य नहीं हूं, सबका उपाय-मात्र हूं। मैं किसीका घर नहीं हूं, पर सबको घर ले जाती हूं। मुझे दिन-रात

यही सन्ताप सताता रहता है कि मुझपर कोई तबीयतसे कदम नहीं रखना चाहता, मुझपर कोई खड़ा रहना पसन्द नहीं करता ! जिनका घर बहुत दूर है वे मुझे ही कोसते और शाप देते रहते हैं। मैं जो उन्हें परम धैर्यके साथ उनके घरके द्वार तक पहुंचा देती हूं, उसके लिए कृतज्ञता कहाँ पाती हूं ? वे अपने घर जाकर आराम करते हैं, घरपर आनन्द मनाते हैं, घरमें उनका सुख-सम्मिलन होता है, बिछुड़े हुए सब मिल जाते हैं; और मुझपर केवल थकावटका भाव दरसाते हैं, केवल अनिच्छाकृत श्रम हुआ समझते हैं, मुझे केवल विच्छेदका कारण मानते हैं ! क्या इसी तरह बार-बार दूर ही से, घरके झरोखेमेंसे पंख पसारकर बाहर आती हुई मधुर हास्यलहरी मेरे पास आते ही शून्यमें विलीन हो जाया करेगी ? घरके उस आनन्दका एक कण भी, एक बूँद भी, मैं नहीं पाऊँगी ?

कभी-कभी वह भी पाती हूं। छोटे-छोटे बच्चे जो हँसते हँसते मेरे पास आते हैं और शोरगुल मचाते हुए मेरे पास आकर खेलते हैं। अपने घरका आनन्द वे मेरे पास ले आते हैं। उनके पिताका आशीर्वाद और माताका स्नेह घरसे बाहर निकलकर, मेरे पास आकर, सड़कपर ही मानो अपना घर बना लेता है। मेरी धूलमें वे स्नेह दे जाते हैं, प्यार छोड़ जाते हैं। मेरी धूलको वे अपने वशमें कर लेते हैं; और अपने छोटे-छोटे कोमल हाथोंसे उसकी ढेरीपर हौले-हौले थपकियाँ दे-देकर परम स्नेहसे उसे सुलाया चाहते हैं। अपना निर्मल हृदय लेकर बैठे-बैठे वे उसके साथ बातें करते हैं।

हाय-हाय, इतना स्नेह, इतना प्यार पाकर भी मेरी यह धूल उसका जवाब तक नहीं दे पाती ! मेरे लिए कैसा श्राप है यह !

छोटे-छोटे कोमल पाँव जब मेरे ऊपर से चले जाते हैं तब अपनेको मैं बड़ी कठिन अनुभव करती हूं; मालूम होता है उनके पाँवोंमें लगती होगी। उस समय मुझे कुसुम-कलीकी तरह कोमल होनेकी साध होती है। अपने मनकी बात मैं समझा नहीं सकती; पर किसी कविने कह दी है :—

"जहँ-जहँ अरुण चरण चलि जाता ;
तहँ-तहँ धरनि होय मम गाता।"

अरुण चरण ऐसी कठोर धरतीपर क्यों चलते हैं ? किन्तु यदि न चलते, तो शायद कहीं भी हरी-हरी घास पैदा न होती।

प्रतिदिन नियमितरूपसे जो मेरे ऊपरसे चलते हैं उन्हें मैं अच्छी तरह पहचानती हूं। पर वे नहीं जानते कि उनके लिए मैं कितनी प्रतीक्षा किया करता हूं। मैं मन-ही-मन उनकी मूर्तिकी कल्पना कर लेती हूं। बहुत दिन हुए, ऐसी ही एक प्रतिमा अपने कोमल चरणोंको लेकर दोपहरको बहुत दूरसे आती, छोटे-छोटे दो नूपुर रुनझुन-रुनझुन करके उसके पाँवोंमें रो-रोकर बजते रहते। शायद उसके ओठ बोलनेके ओठ न थे, शायद उसकी बड़ी-बड़ी आँखें संध्याके आकाशकी भाँति म्लानदृष्टिसे किसीके मुँहकी ओर देखती रहतीं। उस चबूतरावाले बटवृक्षके बाईं तरफ, जहाँसे मेरी एक शाखा गाँवकी ओर चली गई है वहाँ, पेड़के नीचे वह हारी-थकी चुपचाप खड़ी रहती। और दूसरा एक कोई अपना दिन-भरका काम पूरा

करके अनमने मनसे गाना गाता हुआ उसके सामनेसे गाँवकी ओर चला जाता। शायद वह किसीकी ओर देखता न था, कहीं भी ठहरता न था, और सीधा घरके द्वारपर जाकर अपना पुरबी गीत खतम करता था। उसके चले जानेपर वह बालिका थके हुए पैरोंसे फिर उसी रास्तेसे लौट जाती जिससे वह आई थी। बालिका जब लौटती तब मालूम होता कि अन्धकार हो आया है। संध्याके अन्धकारका ठंडा स्पर्श मैं अपने अंगप्रत्यंगोंपर पूरी तरह अनुभव करने लगती। तब गोधूलिके समयकी कौओंकी काँवकाँव बिलकुल थम जाती; पथिकोंका आना-जाना करीब-करीब बन्द-सा हो जाता। संध्याकी हवाके झोंकोंसे बाँसके झाड़ रह-रहकर झरझर-झरझर शब्द कर उठते। इसी तरह प्रतिदिन वह अत्यन्त मन्दगतिसे आती और वैसे ही धीरे-धीरे चली जाती। एक दिन, फागुनके अन्तके दिनोंमें, दोपहरको जब आमके बौर हवासे झड़ रहे थे, वह दूसरा जो आता था वह न आया। उस दिन बहुत रात बीते बालिका घर लौट गई। जैसे अभी बीच-बीचमें पेड़ोंसे सूखे पत्ते झड़ रहे हैं वैसे ही कभी-कभी दो-एक बूँद आँसू मेरी नीरस गरम धूलपर पड़ते और सूख जाते थे। फिर, उसके दूसरे ही दिन, दोपहरको वह बालिका उसी पेड़के नीचे आकर खड़ी हुई, पर उस दिन भी वह न आया। फिर रातको वह धीरे-धीरे घरकी तरफ चल दी। कुछ दूर जाकर उससे चला न गया; मेरे ऊपर धूलमें लोट गई बेचारी; और दोनों हाथोंसे मुँह ढककर छाती फाड़-फाड़कर रोने लगी।

कौन हो बिटिया ? क्या इस निर्जन रात्रिमें भी कहीं कोई मेरी छातीपर आश्रय लेने आता है ! तू जिसके पाससे लौटी है क्या वह मुझसे भी कठोर है ? तूने जिसे पुकार-पुकारकर कुछ जवाब नहीं पाया, क्या वह मुझसे भी बढ़कर गूँगा है ? तूने जिसकी तरफ देखा है, क्या वह मुझसे भी ज्यादा अन्धा है ?

बालिका उठ बैठी, खड़ी हो गई, आँखें पोंछ डालीं, और फिर, मुझे छोड़कर चली गई। शायद वह घर लौट गई, शायद वह अब भी शान्तमुखसे घरका काम-धन्धा करती होगी, शायद वह किसीसे भी अपने किसी दुःखकी बात नहीं कहती होगी। हाँ, किसी-किसी दिन संध्या-समय वह घरके आँगनमें चन्द्रमाकी चाँदनीमें पैर फैलाकर बैठी दिखाई देती है ; उस वक्त कोई बुलाता तो वह चौंक पड़ती ; और झट उठकर भीतर चली जाती। पर मैंने उसके दूसरे दिनसे आज तक फिर कभी उसके चरणोंके स्पर्शका अनुभव नहीं किया।

ऐसे कितने ही पाँवोंके शब्द नीरव हो गये हैं। मैं क्या उनकी याद रख सकती हूं ? सिर्फ उन पाँवोंकी करुण नूपुरध्वनि अब भी कभी-कभी याद आ जाती है। पर मुझे क्या घड़ी-भर भी शोक या सन्ताप करनेकी छुट्टी मिलती है ? शोक किस-किसके लिए करें ? ऐसे कितने ही आते हैं और चले जाते हैं।

उफ्, कैसी कड़ी घाम है ! एक-एक बार साँस छोड़ती हूं और तपी हुई धूल सुनील आकाशको धुआँधार करके उड़ी चली जाती है। अमीर और गरीब, सुखी और दुःखी, यौवन और बुढ़ापा, हँसी और रोना, जन्म और मृत्यु सब-कुछ

मेरे ऊपरसे एक ही साँसमें धूलके स्रोतकी तरह उड़ता चला जा रहा है। इसीलिए सड़कके न हँसी है, न रोना। घर ही बीते-हुएपर शोक करता है, वर्तमानके लिए सोचता है, भविष्यके लिए आशामें डूबा रहता है। पर सड़क? वह तो वर्तमानके प्रत्येक पलमें हजारों-लाखों नये-नये अतिथियोंको लेकर ही व्यस्त रहती है। ऐसे स्थानपर, अपने पद-गौरवपर विश्वास करके, अत्यन्त दर्पके साथ पैर रखता हुआ कौन अपने चिर-चरणचिह्न रख जानेका प्रयास करता है? जिनके लिए यहाँकी हवामें तुम दीर्घ-निःश्वास छोड़ जाते हो, तुम्हारे चले जानेपर, क्या वे तुम्हारे पीछे तुम्हारे लिए विलाप करते रहेंगे? तुम्हारे वे दीर्घ-निःश्वास क्या नये अतिथियोंकी आँखोंमें आँसू खींच लायेंगे? हवापर हवा क्या टिक सकती है? नहीं नहीं, व्यर्थकी कोशिश है। मैं अपने ऊपर कुछ भी पड़ा रहने नहीं देती; न हँसी, न रोना। सिर्फ मैं ही अकेली पड़ी हुई हूं; और पड़ी रहूंगी।

दालिया

भूमिका

शाह शुजा जब अपने भाई औरंगजेबसे लड़ाईमें हार गये तो डरके मारे भागकर उन्होंने अराकानके राजाके यहाँ शरण ली। उनके साथ उनकी तीन सुन्दरी लड़कियाँ भी थीं। अराकानके राजाने चाहा कि उन लड़कियोंके साथ शहजादोंकी शादी हो जाय। इस प्रस्तावके छेड़नेपर शाह शुजा बहुत ही नाराज हुए। नतीजा यह हुआ कि राजाके हुक्मसे एक दिन

उन्हें छलसे नावपर बिठाकर बीच नदीमें डुबो देनेकी कोशिश की गई। उस विपत्तिके समय, छोटी लड़की अमीनाको उन्होंने स्वयं नदीमें पटक दिया। बड़ी लड़कीने अपने-आप आत्महत्या कर ली। मझली लड़की जुलेखा अपने पिताके खास और विश्वस्त खिदमदगार रहमत अलीके साथ तैरकर निकल गई। और शुजाने लड़ते लड़ते अपनी जान दे दी।

अमीना नदीके बहावमें बहकर दैवयोगसे जल्द ही एक धीवरके जालमें उलझ गई; और धीवरने उसे तुरन्त ही निकाल लिया। उस धीवरके घर ही वह पली और बड़ी हुई।

इस बीचमें बूढ़े बादशाहकी मृत्यु हो गई; और युवराज गद्दीपर बैठे।

१

एक दिन सवेरे बूढ़े धीवरने आकर अमीनाको डाटकर कहा—"तिन्नी!" धीवरने अपनी अराकानी भाषामें आमीनका नया नाम रखा था 'तिन्नी'। बोला—"तिन्नी, आज सवेरेसे तुझे हो क्या गया है? काम-धन्धेमें बिलकुल हाथ ही नहीं लगाया? नये जालमें गौंद भी नहीं लगाया, हमारी नाव—"

अमीनाने धीवरके पास जाकर बड़े प्यारसे कहा—"बाबा, आज मेरी बहन आई है बहन! इसलिए आज छुट्टी मना रही हूं!"

"अरे! तेरी बहन कहाँसे आई री?"

जुलेखा न-जाने कहाँसे निकल आई; बोली—"मैं हूं, मैं!"

बूढ़ा दंग रह गया। और फिर, जुलेखाके बिलकुल पास आकर गौरसे उसका मुँह देखने लगा।

फिर झटसे पूछ बैठा—"तू कुछ काम-काज भी जानती है ?"

अमीनाने कहा—"बाबा, जीजीके बदले मैं काम कर दिया करूंगी। जीजी काम नहीं कर सकती।"

धीवरने कुछ देर सोचकर कहा—"तू रहेगी कहाँ ?"

जुलेखाने कहा—"अमीनाके पास।"

बुढ़ेने सोचा, यह तो बड़ी मुश्किल हुई! पूछ उठा—"खायगी क्या ?"

जुलेखाने कहा—"उसके लिए इन्तजाम है।"

और अवज्ञाके साथ धीवरके सामने एक मोहर फेंक दी।

अमीनाने मुहर उठाकर धीवरके हाथमें थमा दी; और चुपकेसे कहा—"बाबा, अब कुछ मत कहना, तुम कामपर जाओ। बहुत अबेर हो गई है।"

जुलेखा भेष बदलकर बहुत जगह घूमती हुई अन्तमें अमीनाका पता लगाकर धीवरकी झोंपड़ीमें कैसे आ पहुंची, इसका बड़ा लम्बा-चौड़ा किस्सा है; कहनेसे एक अलग कहानी ही बन जायगी। उसका रक्षक रहमत अली अपना नाम शेख रहमत रखकर इस वक्त अराकानकी राज-सभामें काम कर रहा है।

२

छोटी-सी नदी बह रही है। गरमियोंके दिन हैं। सुबहकी ठंडी-ठंडी हवासे कैलू-वृक्षकी लाल-लाल पुष्प-मंजरियोंसे फूल झर रहे हैं। पेड़के नीचे बैठी जुलेखा अमीनासे कहने लगी—"भगवानने जो हम दोनों बहनोंको मौतके हाथसे बचाया है वह

सिर्फ इसीलिए न, कि अब्बा-जानकी हत्याका बदला लिया जाय? नहीं तो, इसका और सबब ही क्या हो सकता है?"

अमीनाने नदीके उस पार सबसे ज्यादा दूरकी ओर, सबसे ज्यादा छायामय पेड़ोंकी कतारकी ओर देखते हुए कहा—"जीजी, अब उन सब बातोंको मत छेड़ो बहन, अब मुझे यह दुनिया अच्छी लगती है। मार-काट करके मरते हैं तो मरदोंको मरने दो, मुझे तो यहाँ कोई तकलीफ नहीं मालूम होती।"

जुलेखाने कहा—"छिःछिः, अमीना! शाहजादेकी लड़की है न तू! कहाँ देहलीका तख्त-ताऊस और कहाँ यह अराकानके एक धीवरकी झोंपड़ी!"

अमीनाने हँसकर कहा—"जीजी, देहलीके तख्त-ताऊससे इस बूढ़े धीवरकी झोंपड़ी और इस कैलूकी छाया अगर किसी लड़कीको ज्यादा प्यारी लगे, तो देहलीका शाही सिंहासन उसके लिए एक बूंद आँसू भी न बहायेगा!"

जुलेखाने कुछ अनमने-भावसे और कुछ अमीनाको लक्ष्य करके कहा—"हाँ, तुझे तो दोष नहीं दिया जा सकता; तब तू बिलकुल ही छोटी थी। पर एक बार मनमें सोच तो देख, अब्बा-जान तुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करते थे, इसीलिए उन्होंने अपने हाथसे तुझे पानीमें डाल दिया था। ऐसे वालिदकी दी हुई मौतसे इस जिन्दगीको तू ज्यादा प्यारी मत समझ। हाँ, अगर बदला ले सकी, तो जिन्दगीके कुछ मानी भी हो सकते हैं।"

अमीना चुप्पी साधे बैठी रही; और उस पार बहुत

दूरकी ओर देखती रही। मगर उसके चेहरेपर यह भाव साफ झलकने लगा कि 'सब-कुछ ठीक है, पर…'; इसके मानी यह कि बाहरकी इस हवा और पेड़की छायाने, उसके नवयौवन और न-मालूम कौन-सी एक आरामदे यादने उसे गहराईमें गरक कर रखा है।

कुछ देर बाद, एक लम्बी साँस लेकर वह बोली—"जीजी, तुम बैठो जरा। घरका काम-काज बाकी पड़ा है। बिना मेरे राँधे बूढ़ा भूखा रह जायगा।"

३

जुलेखा अमीनाकी इस हालतका खयाल करके बड़ी उदास हो गई। बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। इतनेमें अचानक धम्मसे किसीके कूदनेकी आवाज हुई; और पीछेसे किसीने आकर उसकी आँखें मींच लीं।

जुलेखाने घबराकर कहा—"कौन !"

गलेकी आवाज सुनकर वह नौजवान उसकी आँखोंपरसे हाथ हटाकर सामने आ खड़ा हुआ। जुलेखाके मुंहकी ओर देखकर बेधड़क बोल उठा—"तुम तो तिन्नी नहीं हो !" इस ढंगसे बोला जैसे जुलेखा अपनेको 'तिन्नी' साबित करनेकी कोशिश कर रही हो, और फकत उसकी गजबकी होशियारीने ही इस धोखेबाजीसे उसे बचा लिया हो।

जुलेखा अपना दुपट्टा सम्हालती हुई तेजीसे उठ खड़ी हुई; उसकी आँखोंसे आग बरसने लगी। कड़ककर बोली—"कौन हो तुम ?"

युवकने कहा—"तुम मुझे नहीं पहचानतीं। तिन्नी जानती है। तिन्नी कहाँ है?"

तिन्नी शोरगुल सुनकर बाहर निकल आई। जुलेखाका गुस्सा और युवकका ताज्जुब और हैरानी-भरा चेहरा देखकर अमीना कहकहा मारकर हँस पड़ी। बोली—"जीजी, इसकी बातपर तुम कुछ ध्यान मत दो। यह आदमी थोड़े ही है! अगर कुछ बेअदबी की हो तो मैं इसे डाटे देती हूं। दालिया, क्या किया था तुमने?"

युवकने फौरन जवाब दिया—"सिर्फ पीछेसे आकर आँखें मींच ली थीं। मैंने समझा था कि तिन्नी है, पर यह तो तिन्नी नहीं—"

तिन्नी सहसा ऊपरसे जबरदस्त नाराजगी जाहिर करती हुई बोली—"फिर! छोटे मुंह बड़ी बात! कब तुमने तिन्नीकी आँखें मींची थीं? बड़े हिम्मतवाले हो गये हो!"

युवकने कहा—"आँखें मींचनेमें ऐसी क्या हिम्मतकी जरूरत है; सिर्फ पहलेकी आदत चाहिए। पर सच कहता हूं तिन्नी, आज जरा-कुछ डर-सा गया था।"

इतना कहकर वह निगाह बचाकर जुलेखाकी ओर उंगलीसे इशारा करके अमीनाके मुँहकी तरफ देखता हुआ मुसकराने लगा।

अमीनाने कहा—"नहीं, तुम बड़े गँवार हो। शाहजादीके सामने खड़े होने लायक जरा भी तमीज नहीं तुममें। तुम्हें तमीज सिखानेकी जरूरत है। देखो, इस तरह सलाम करो।"

इतना कहकर अमीनाने अपनी यौवन-मंजरित देह-लताको

बड़ी नजाकतके साथ झुकाकर जुलेखाको सलाम किया। और युवकने बड़ी मुश्किलसे उसकी बहुत ही अधूरी नकल की।

अमीना बोली—"इस तरह तीन कदम पीछे हट आओ।"

युवक पीछे हट आया।

"फिर सलाम करो।"

फिर सलाम किया।

इसी तरह पीछे हटाते-हटाते, सलाम कराते-कराते अमीना उस युवकको झोंपड़ीके दरवाजे तक ले गई।

बोली—"भीतर जाओ।"

युवक भीतर चला गया।

अमीनाने कोठरीका दरवाजा बन्द करके साँकल चढ़ा दी; और बोली—"जरा घरका काम-काज करो। देखो, आँच न बुझने पावे!"

इसके बाद वह जुलेखाके पास आ बैठी।

बोली—"जीजी, गुस्सा मत हो बहन, यहाँके आदमी ही ऐसे हैं। मेरा तो इनसे जी उकता गया है।"

मगर अमीनाके मुंहपर या उसके बरतावमें इसका कोई भी लक्षण नहीं दिखाई दिया; बल्कि बहुत-सी बातोंमें यहाँके आदमियोंकी तरफ उसकी कुछ बेजा तरफदारी ही नजर आती है।

जुलेखाने गुस्सा दिखाकर कहा—"सचमुच, अमीना, तेरे बरतावसे मैं तो दंग रह गई हूं! एक अनजान नौजवान आकर देहसे हाथ लगावे, यह तो उसकी बड़ी-भारी हिमाकत है!"

अमीनाने बहनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर कहा—"हाँ, देखो तो

सही। अगर कोई बादशाह या नवाबका लड़का ऐसा बेहूदा सलूक करता, तो उसे मैं बेआबरू करके तुरत निकाल बाहर करती।"

जुलेखासे भीतरकी हँसी रोके न रुक सकी; हँसकर बोली—"सच-सच बता अमीना, तैंने जो कहा था कि दुनिया मुझे बड़ी अच्छी लगती है, सो क्या इसी जंगली नौजवानके लिए?"

अमीनाने कहा—"अच्छा तो सच-सच कह डालूं। यह मेरी बड़ी मदद करता है। फल-फूल तोड़ देता है, शिकार कर लाता है, किसी कामके लिए बुलाओ तो तुरत दौड़ा आता है। बहुत बार सोचती हूं कि इसे डाट-डपटकर ठीक करूं, पर मेरी सब कोशिशें फजूल जाती हैं। अगर खूब गुस्सा होकर कहूं कि 'दालिया, तुमपर मैं बड़ी नाखुश हूं', तो वह मेरे मुँहकी तरफ देखता और बड़े मजेसे चुपचाप मुसकराता रहता है! इस देशकी हँसी ही शायद ऐसी होती होगी! दो-चार थप्पड़-मुक्के जमा दो, बड़ा खुश होता है! यह भी आजमाकर देख लिया है मैंने। देखो न, घरमें बन्द कर दिया है, बड़े मजेमें है! दरवाजा खोलते ही देखोगी, मुंह और आँख लाल-सुर्ख करके बड़ी मौजसे चूल्हा फूँक रहा होगा! बताओ, इससे कैसे बस चले? मैं तो हैरान हो चुकी हूं बहन।"

जुलेखाने कहा—"अच्छा, अब मैं कोशिश करूँगी।"

अमीनाने हँसते हुए विनयके साथ कहा—"ना बहन, तुम्हारे पाँव पड़ती हूं। अब तुम उससे कुछ मत कहना।"

यह बात अमीनाने इस ढंगसे कही मानो वह जंगली युवक अमीनाका बड़ी साधसे पाला हुआ हिरन हो; मानो उसे अब

भी ऐसी आशंका है कि अभी तक उसका जंगली स्वभाव दूर नहीं हुआ है, दूसरे किसी आदमीको देखकर कहीं भड़क न जाय, भाग न जाय !

इतनेमें धीवरने आकर कहा—"आज दालिया नहीं आया तिन्नी ?"

"आया तो है।"

"कहाँ गया ?"

"बहुत ऊधम मचा रहा था, इसलिए उसे कोठरीमें बन्द कर दिया है।"

बूढ़ा कुछ सोचमें पड़ गया ; बोला—"अगर हैरान करे, तो जरा सह लिया कर बेटी ! कम उमरमें सभी ऐसे उधमी हुआ करते हैं। ज्यादा तंग मत किया कर उसे। दालियाने कल एक 'थलु' देकर मुझसे तीन मछलियाँ खरीदी थीं मालूम है !" 'थलु'का अर्थ है 'मोहर'।

अमीना बोली—"फिकर मत करो बाबा, आज मैं उससे दो थलु वसूल करा दूंगी; और तुम्हें एक भी मछली नहीं देनी पड़ेगी।"

बूढ़ा अपनी पाली-पोसी लड़कीके अन्दर इतनी कम उमरमें ऐसी चतुराई और कमाऊ-बुद्धि देखकर बड़ा खुश हुआ ; और प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरकर चला गया।

४

ताज्जुब तो इस बातका है कि दालियाके यहाँ आने-जानेके बारेमें जुलेखाको भी धीरे-धीरे अब कोई आपत्ति नहीं रही।

विचार कर देखा जाय तो इसमें ताज्जुब कुछ नहीं। कारण, जैसे नदीके एक ओर स्रोत है और दूसरी ओर किनारा, उसी तरह औरतोंमें हृदयका आवेग और लोकलज्जा है। मगर सभ्य-समाजके बाहर अराकानके मैदानमें लोक कहाँ जिसकी लज्जा हो?

यहाँ तो सिर्फ ऋतु या मौसम बदलनेके साथ-साथ पेड़-पौधोंमें फल-फूल लगते और झड़ते रहते हैं। और, सामने बहनेवाली वह नीली नदी? बरसातमें उफनती, कुआर-कातिकमें निखरती, जाड़ोंमें सिकुड़ती, बसन्तमें शरमाती और गरमियोंमें ऐसे छरछरं बदनकी हो जाती कि देखते ही बनती है। और चिड़ियोंका चहचहाना? आजाद और अन्दरूनी उमंगोंसे भरपूर उनकी मीठी-मीठी बोलियोंमें हमारी तरह एक-दूसरेके प्रति न तो समालोचना है और न कटाक्ष। दखिनी हवा बीच-बीचमें नदीके उस पारके गाँवोंसे इन्सानके आनन्दकी गूंज बहा लाती है, पर कानाफूसी नहीं लाती।

गिरे हुए खंडहर मकानपर आहिस्ता-आहिस्ता जैसे घास पैदा होती रहती है, ठीक वैसे ही, कुछ दिन यहाँ रहनेसे आदमीपर प्रकृतिका ऐसा छुपा हुआ हमला होता रहता है कि उसकी बनाई हुई लोक-ब्योहारकी मजबूत भीत भी ढहने लगती है और इस बातका उसे पता तक नहीं रहता। असलमें, औरतोंको दो हमउमर या समयोग्य नर-नारीके मिलन-दृश्यके देखनेमें जितना आनन्द आता है उतना और-किसी बातमें नहीं। इतना रहस्य, इतना सुख, इतना बड़ा अथाह कुतूहलका विषय उनके लिए और-कुछ हो भी नहीं सकता। लिहाजा, जंगलकी इस कुटियामें,

इस सुनसान गरीबीकी छायामें, जब जुलेखाका कुल-गर्व और लोक-मर्यादाका भाव अपने-आप ढीला पड़ने लगा तब उस फूलोंसे भरे-हुए कैलूके पेड़की छायामें अमीना और दालियाके मिलनके इस दिलचस्प खेलके देखनेमें उसे बड़ा आनन्द आने लगा।

शायद उसके भी तरुण हृदयमें एक अपरितृप्त आकांक्षा या चाह जाग उठती और उसे सुख-दुःखसे चंचल कर देती थी। अन्तमें ऐसा हो गया कि अगर किसी दिन युवकके आनेमें देर हो जाती तो अमीना जैसे परेशान हो उठती, जुलेखा भी वैसे ही आग्रहके साथ उसका इन्तजार करने लगती; और फिर उन दोनोंके इकट्ठा होनेपर, चित्रकार जैसे अपनी हाल ही में पूरी की हुई तस्वीरको कुछ दूरीसे देखता है वैसे ही स्नेहके साथ मुसकराती हुई जुलेखा उनकी ओर देखती रहती; किसी-किसी दिन मौखिक युद्ध भी करती, छलसे डाट-डपट भी देती, अमीनाको घरमें बन्द करके युवकके मिलनावेगमें बाधा भी डालती।

बादशाह और जंगलमें एक तरहकी समानता होती है। दोनों ही आजाद होते हैं, दोनों ही अपने राज्यके एकाधिपति होते हैं, दोनोंको ही किसी दूसरेका नियम-कानून मानकर नहीं चलना पड़ता। दोनों ही में प्रकृतिका स्वाभाविक बड़प्पन और सरलता आ जाती है। जो बीचके दरजेके हैं, जो रात-दिन लोक-शास्त्रके अक्षर मिलाकर जीवन बिताते हैं वे ही कुछ अलग तरहके होते हैं; वे ही बड़ोंके सामने दास, छोटोंके लिए प्रभु और ऐरेगैरे स्थानमें बिलकुल 'किं-कर्तव्य-विमूढ़' या हक्केबक्के-से हो जाते हैं। असभ्य दालिया प्रकृति-महारानीका अल्हड़ लड़का

है। शाहजादियोंके सामने उसे कोई संकोच नहीं; और शाहजादियाँ भी उसे बराबरीका आदमी समझती हैं। दालिया हँसमुख, सरल, कौतुकप्रिय, हर हालतमें हिम्मती, निर्भीक और निःसंकोच प्रकृतिका युवक है; साथ ही उसके चरित्रमें दरिद्रताका भी कोई लक्षण नहीं।

परन्तु इन सब खेलोंमें एकाएक जुलेखाका हृदय हाय-हाय कर उठता; वह सोचती कि शाहजादीकी जिन्दगीका क्या यही नतीजा होना चाहिए?

एक दिन सवेरे दालियाके आते ही जुलेखाने उसका हाथ मसककर कहा—"दालिया, तुम मुझे यहाँके बादशाहको दिखा सकते हो?"

"दिखा सकता हूं। पर क्यों?"

"मेरे पास एक छुरा है, उसे मैं उसके सीनेमें भोंकना चाहती हूं।"

पहले तो दालिया कुछ दंग-सा रह गया। फिर जुलेखाके खूँखार और बदला लेनेकी खुशीसे चमकते-हुए चेहरेकी ओर देखकर उसका सारा चेहरा हँसीसे खिल उठा; मानो इतनी बड़ी मजेकी बात उसने पहले कभी सुनी ही न हो! अगर दिल्लगी हो तो ऐसी ही हो, शाहजादीके लायक! कोई बात नहीं, चीत नहीं, पहली ही मुलाकातमें एक छुरेका आधा हिस्सा एक जिन्दा बादशाहके सीनेमें भोंके जानेपर, इस तरहके अत्यन्त अन्तरंग व्यवहारसे बादशाहके होश-हवाश कैसे फाख्ता हो जायँगे, यही चित्र क्रमशः उसके मनमें उदित होने लगा; और

उसका मन्द-मन्द कौतुक-हास्य रह-रहकर उच्चहास्यमें परिणत होने लगा।

५

उसके दूसरे ही दिन जुलेखाको रहमतकी एक गुप्त चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—"अराकानके नये राजाको पता लग गया है कि तुम दोनों बहन धीवरकी झोंपड़ीमें हो। छिपकर अमीनाको उन्होंने देख लिया है; और वे उसपर मोहित भी हो गये हैं। उसके साथ ब्याह करनेके लिए वे जल्द ही उसे महलमें लानेकी तैयारियाँ कर रहे हैं। बदला लेनेका यही मौका है; ऐसा अच्छा मौका फिर हाथ न आयेगा!"

जुलेखाने मजबूतीसे अमीनाका पहुंचा थामकर कहा—"खुदाकी मरजी साफ दीख रही है अमीना! तेरी जिन्दगीमें अब फर्ज अदा करनेका वक्त आ गया। हँसी-खेल अब अच्छा नहीं लगता। उठ, तैयार हो जा!"

दालिया मौजूद था, अमीनाने उसके मुंहकी तरफ देखा। देखा कि वह कौतूकपूर्ण हँसी हँस रहा है।

उसकी ऐसी हँसी देखकर अमीनाका दिल चूर-चूर हो गया; बोली—"जानते हो दालिया, मैं बेगम बनने जा रही हूं!"

दालियाने हँसकर कहा—"थोड़ी ही देरके लिए न?"

अमीनाने पीड़ित और विस्मित चित्तसे मन ही-मन सोचा, सचमुच यह जंगलका हिरन है, इसके साथ आदमियों जैसा बरताव करना अपना ही पागलपन है।

अमीनाने दालियाको और भी जरा सचेत करनेके लिए

कहा—"बादशाहको मारकर फिर क्या मैं लौट सकती हूं?"

दालियाने इस बातको संगत समझकर कहा—"हाँ, लौटना तो मुश्किल ही है।"

अमीनाकी सारी अन्तरात्मा यकायक सुस्त पड़ गई।

फिर भी, जुलेखाकी ओर मुड़कर, एक लम्बी साँस लेकर, उसने कहा—"जीजी, चलो, मैं तैयार हूं।"

फिर दालियाकी ओर मुड़कर, बिंधे-हुए हृदयसे हँसीमें बोली—"बेगम बनकर मैं पहले तुम्हींको बादशाहके खिलाफ बगावत करनेके जुर्ममें सजा दिलवाऊंगी! उसके बाद फिर जो कुछ करना होगा सो करूंगी।"

सुनकर दालियाको बड़ा मजा आया; मानो इस बातका अमल होनेपर उसे बहुत-कुछ आनन्दकी चीज मिलेगी।

६

घुड़सवार, हाथी, पियादे, बाजे, झंडियों और रोशनियोंकी ऐसी धूमधाम शुरू हुई कि धीवरका घर-द्वार टूटनेकी नौबत आ गई। शाही महलसे दो जड़ाऊ सोनेकी पालकियाँ आई हैं, शाहजादियोंको लेनेके लिए।

अमीनाने जुलेखाके हाथसे छुरा ले लिया। बहुत देर तक वह उसकी हाथी-दाँतकी बनी हुई मूठको देखती रही; और फिर चोली उघाड़कर, अपनी छातीपर एक बार उसकी धारकी आजमाइश कर देखी। जीवन-कलीके डंठलके पास छुरेको एक बार छुआ लिया; और फिर उसे मियानमें रखकर चोलीके अन्दर छिपा लिया।

उसकी बड़ी इच्छा थी कि इस मौतके सफरके पहले एक बार वह दालियासे मिल लेती; पर कलसे वह लापता है। दालिया उस दिन जो हँस रहा था, उसमें शायद उसके रूठनेकी चिनगारियाँ सुलग रही थीं।

पालकीमें बैठनेके पहले अमीनाने अपने बचपनके आश्रयको आँसुओंमेंसे एक बार देखा; अपने घरके उस पेड़को, अपनी घरकी उस नदीको। धीवरका हाथ थामकर वह काँपती हुई जबानसे बोली—"बाबा, अब मैं चली। तिन्नी तो जाती है, अब तेरी घर-गृहस्थी कौन सम्हालेगा?"

बूढ़ा यकायक बच्चेकी तरह रो उठा।

अमीनाने कहा—"बाबा, अगर दालिया यहाँ आवे, तो उसे यह अँगूठी दे देना। कहना, तिन्नी जाते वक्त दे गई है।"

इतना कहकर जल्दीसे वह पालकीमें बैठ गई। बड़ी धूमधामके साथ पालकी रवाना हो गई। अमीनाकी अपनी और उसके बाबाकी झोंपड़ी, नदीका किनारा, कैलूके पेड़के नीचेका चबूतरा, सब-कुछ उसे सुनसान अँधेरेमें विलीन होता दिखाई देने लगा।

यथासमय दोनों पालकियोंने तोरणद्वार पार करके रनवासमें प्रवेश किया। दोनों बहनें पालकीसे बाहर निकल आईं।

अमीनाके मुँहपर कतई हँसी नहीं थी; और न आँखोंमें आँसुओंका नामो-निशान ही था। जुलेखाका मुँह सफेद-फक पड़ गया था। फर्ज जब तक दूर था तब तक उसकी उमंग और हौसलेमें तेजी थी; मगर अब उसने काँपते हुए हृदयसे

व्याकुल स्नेहसे अमीनाको छातीसे लगा लिया। मन-ही-मन कहने लगी—'नये प्रेमके डंठलसे तोड़कर इस खिलते-हुए फूलको मैं किस खूनके बहावमें बहाने ले जा रही हूं!'

लेकिन अब सोचनेका वक्त नहीं है। बाँदियों द्वारा लाई हुई सैकड़ों-हजारों बत्तियोंकी तेज निगाहोंके बीचसे दोनों बहनें सपनेकी-सी चाल चलने लगीं। अन्तमें बादशाहके खास महलके दरवाजेके पास लहमे-भरके लिए ठहरकर अमीनाने जुलेखासे कहा—"जीजी!"

जुलेखाने अमीनाको मजबूत आलिंगनमें बाँधकर उसका मुंह चूम लिया। फिर दोनों धीरे-धीरे भीतर घुसीं।

देखा कि कमरेके बीचो-बीच पलंगपर मसनदके सहारे शाही पोशाक पहने बादशाह बैठे हुए हैं। अमीना बड़े संकोचके साथ दरवाजेके पास खड़ी रही।

जुलेखाने आगे बढ़कर बादशाहके पास जाकर देखा, बादशाह चुप बैठा बड़ा मजा ले-लेकर मुसकरा रहा है!

जुलेखा बोल उठी—"दालिया!"

अमीना मूर्छित हो गई।

दालिया उठकर उसे घायल चिरैयाकी तरह गोदमें उठाकर पलंगके पास ले गया। होश आनेपर अमीनाने चोलीके अन्दरसे छुरा निकालकर जीजीके मुंहकी ओर देखा; जीजीने दालियाके मुंहकी ओर देखा; और दालिया चुपचाप मुसकराता हुआ दोनोंकी ओर देखता रहा। और छुरी भी अपनी मियानमेंसे जरा-सा मुँह निकालकर इस तमाशेको देखकर चमचमाकर हँसने लगी।

त्याग

१

फागुनकी रात है। आमके बौरोंकी सुगन्ध लेकर नव-वसन्तकी मीठी-मीठी हवा चल रही है। तालाबके किनारे एक पुराने लीचीके पेड़के घने पत्तोंमेंसे रात-रातभर जागनेवाले किसी पपीहेकी तान मुखर्जियोंके घरके एक निद्राहीन शयनगृहमें प्रवेश कर रही है। हेमन्तचन्द्र जरा-कुछ चंचलताके साथ कभी तो अपनी स्त्रीके सिरके बँधे-हुए जूड़ेमेंसे बाल खोलकर अपनी उंगलियोंमें लपेटता है, कभी उसके कड़े और चूड़ियोंमें भिड़न्त कराकर टुनटुन आवाज सुनता है, और कभी उसके जूड़ेमें लिपटी-हुई फूलकी मालाको उतारकर उसके मुँहपर रख देता है। शामके वक्त चुपचाप खड़े हुए फूलके पौधोंको सचेत करनेके लिए हवा जैसे एक बार इधरसे और एक बार उधरसे उन्हें जरा-जरा हिला-डुला देती है, हेमन्तकी भी लगभग वैसी ही हालत है।

पर कुसुम सामनेके चाँद और उसकी चाँदनीमें बहते-हुए शून्यकी ओर आँखें गड़ाकर चुपचाप बैठी है। पतिकी चञ्चलता उसे छूकर उससे टकराकर पीछे लौट जाती है। अन्तमें हेमन्तने कुछ अधीरताके साथ कुसुमके दोनों हाथ पकड़कर झकझोर डाले, बोला—"कुसुम, कहाँ हो तुम? तुम तो इतनी दूर पहुंच गई हो कि दूरबीनसे बड़े गौरके साथ देखनेपर बड़ी मुश्किलसे कहीं बूँद-सी दिखाई पड़ती हो! मेरी बड़ी इच्छा है कि आज तुम जरा मेरे पास आ जाओ। देखो तो सही, कैसी सुहावनी रात है!"

कुसुमने शून्यकी ओरसे दृष्टि हटाकर हेमन्तकी ओर देखते हुए कहा—"यह चाँदनी रात, यह वसन्तकी सुहावनी हवा, इसी वक्त तुरत झूठ होकर नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है, मैं एक ऐसा मन्त्र जानती हूं !"

हेमन्तने कहा—"अगर जानती हो, तो इस वक्त उसे पढ़नेकी जरूरत नहीं; बल्कि ऐसा मन्त्र अगर कोई याद हो कि जिससे हफ्तेमें तीन-चार इतवार या छुट्टियाँ पड़ें, या रात शामके पाँच-छह बजे तक ठहर सके, तो उसे सुननेके लिए मैं तैयार हूं।" कहते हुए उसने कुसुमको और-भी अपनी ओर खींचना चाहा। पर कुसुम उस आलिंगनकी बेड़ीमें पकड़ाई न दी; कहने लगी— "मरते वक्त जो बात मैं तुमसे कहना चाहती थी उसे आज ही कहनेको जी चाहता है। तुम मुझे कितनी ही सजा क्यों न दो, मैं उसे बड़ी खुशीसे बरदाश्त कर सकूंगी।"

सजाके बारेमें 'जयदेव'का एक श्लोक सुनाकर हेमन्त जरा रसिकता करनेकी सोच रहा था कि इतनेमें ऐसा मालूम पड़ा कि गुस्सेसे आते-हुए किसीके स्लीपरकी चट्‌चट् आवाज क्रमशः पास आ रही है। यह हेमन्तके पिता हरिहर मुखर्जीके पैरोंकी पहचानी हुई आहट थी। हेमन्त घबरा-सा गया।

हरिहरने दरवाजेके पास आकर मारे गुस्सेके गरजते हुए कहा—"हेमन्त, बहूको अभी तुरत घरसे निकाल बाहर कर।"

हेमन्तने अपनी स्त्रीके मुंहकी ओर देखा; पर स्त्रीने कुछ भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया। सिर्फ दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपाकर अपनी सारी शक्ति और इच्छासे अपनेको मानो वह

लुप्त कर देनेकी कोशिश करने लगी। दखिनी हवाके साथ पपीहेकी मीठी तान पहलेकी तरह ही घरमें आने लगी; पर किसीके कानों तक न पहुंची। दुनिया ऐसी असीम सुन्दर है, मगर फिर भी इतनी जल्दी बेकल हो जाती है।

२

हेमन्तने बाहरसे लौटकर स्त्रीसे पूछा—"क्यों, यह बात सच है?"

स्त्रीने कहा—"हाँ, सच है।"

"इतने दिनोंसे कहा क्यों नहीं?"

"बहुत दफे कहनेकी कोशिश करती रही, पर कह नहीं सकी। बड़ी पापिन हूं मैं।"

"तो आज सब खोलकर कह दो?"

कुसुमने गम्भीरताके साथ दृढ़स्वरसे सब हाल कह सुनाया। कहती हुई मानो वह मजबूत कदम रखती हुई धीरगतिसे जलती आगके भीतरसे निकल गई। कितनी जल रही थी, कोई न समझ सका। सब सुनकर हेमन्त उठकर चल दिया।

कुसुमने समझा कि जो प्राणनाथ चले गये उन्हें अब वह पा नहीं सकती। कुछ भी आश्चर्य न मालूम हुआ। यह घटना भी मानो और-और दैनिक घटनाओंकी तरह अत्यन्त स्वाभाविक भावसे उसके सामने आ खड़ी हुई। उसके मनमें ऐसे ही एक सूखे सन्नाटेका संचार हुआ है। बार-बार उसे दुनिया और प्रेम शुरूसे लेकर आखिर तक झूठा और शून्य मालूम देने लगा। हेमन्तके अतीत प्रेमकी सारी बातें याद करके अत्यन्त

नीरस कठिन और फीकी हँसी एक पैनी निठुर छुरीकी तरह उसके मनपर एक किनारेसे दूसरे किनारे तक दाग कर गई। शायद उसने सोचा कि जिस प्रेमको वह इतना समझती थी, इतना लाड़ और इतनी घनिष्ठता थी जिसमें, जिसका पल-भरका विच्छेद ऐसा दर्दनाक था, जिसका क्षण-भरका मिलन ऐसा सुखमय था, जो असीम अनन्त जान पड़ता था, जन्म-जन्मान्तरमें भी जिसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सकती थी, वही, वही प्रेम है यह! बस, इतनी-सी नींवपर ही खड़ा था वह! समाजने ज्यों ही जरा धक्का लगाया कि चट्से वह बालूकी दीवारकी तरह ढहकर धूलमें मिल गया! हेमन्त अभी-अभी, कुछ देर पहले, गद्गद कण्ठसे उसके कानोंके पास कह रहा था न, "कैसी सुहावनी रात है!" वह रात तो अभी खतम भी नहीं हुई, अब भी वही पपीहा बोल रहा है, वही दखिनी हवा पलंगकी मशहरीको कँपा रही है, वही चाँदनी आराम और सुखकी थकानमें, सोई-हुई सुन्दरीकी तरह, खिड़कीके पास बिछे हुए पलंगपर एक किनारेसे बेहोश पड़ी सो रही हुई है। यह सब-कुछ असत्य है, झूठा है, इन्द्रजालका खेल है! हाँ हाँ, सब झूठा है, सब माया है। और प्रेम? प्रेम उससे भी ज्यादा झूठा है, उससे भी बढ़कर मिथ्याचारी है!

३

दूसरे दिन सवेरे ही अनिद्रासे खुश्क हेमन्त पागलकी तरह प्यारीशंकर घोषालके घर पहुंचा। प्यारीशंकरने पूछा—"कहो भई हेम, क्या खबर है?"

हेमन्त मानो एक जबरदस्त आगकी तरह खूब ऊँची लौमें जल उठा; और काँपता हुआ बोला—"तुमने हमारी जाति नष्ट की है, मेरा सर्वनाश किया है, तुम्हें इसकी सजा भुगतनी पड़ेगी!" – कहते-कहते उसका गला भर आया, कंठ रुक गया।

प्यारीशंकरने जरा मुसकराते हुए कहा—"और तुम लोगोंने हमारी जातिकी रक्षा की है, हमारे समाजकी रक्षा की है, हमारी पीठपर हाथ फेरकर सुखकी नींद सुलाया है! हमपर तुम लोगोंकी बड़ी मेहरबानी है, बड़ा प्रेम है, क्यों?

हेमन्तने तो चाहा कि उसी क्षण प्यारीशंकरको भस्म कर दे; पर उस तेजसे वह खुद ही जलने लगा। प्यारीशंकर बड़े मजेमें ज्यों-का-त्यों और जहाँका तहाँ तन्दुरुस्त बैठा रहा।

हेमन्तने भर्राई हुई आवाजमें कहा—"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

प्यारीशङ्कर कहने लगा—"मैं पूछता हूं, मेरी एक लड़कीके सिवा दूसरी सन्तान नहीं, मेरी उस लड़कीने तुम्हारे बापका क्या बिगाड़ा था? तुम तब छोटे थे, बच्चे थे; इसके भीतर बड़े-बड़े गुल हैं, खिलेंगे तब देखना!

"सुनो, मेरा दामाद नवकान्त जब मेरी लड़कीके गहने चुरा कर विलायत भाग गया, तब तुम बच्चे थे। फिर पाँच साल बाद जब वह बैरिस्टर होकर देश लौटा, तब मुहल्लेमें तूफान उठ खड़ा हुआ! शायद तुम्हे कुछ-कुछ याद हो, और शायद नहीं भी याद हो, क्योंकि तुम तब कलकत्तेके स्कूलमें पढ़ते थे। तुम्हारे बापने गाँवके सरपंच बनकर हुक्म दिया कि 'लड़कीको अगर दामादके

यहाँ भेजनेका इरादा हो तो भेज दो, उसे फिर अपने घर नहीं बुला सकते !' मैंने उनके हाथ जोड़े, पाँव छुए, मिन्नत की कि 'भइया, इस बार तुम मेरी रक्षा करो। मैंने लड़केको गोबर खिलाकर अच्छी तरह प्रायश्चित्त करा दिया है। आप लोग उसे जातिमें ले लीजिये।' तुम्हारे बाप किसी भी तरह राजी नहीं हुए, मैं भी अपनी इकलौती बेटीको न छोड़ सका। जाति छोड़कर गाँव छोड़कर कलकत्ता आकर रहने लगा। पर यहाँ आकर भी पिण्ड न छूटा। अपने भतीजेके ब्याहकी पूरी तैयारियाँ कर चुका था; इतनेमें तुम्हारे बापने जाकर लड़कीवालोंको ऐसा भड़का दिया कि आखिर ब्याह हुआ ही नहीं। समझे ! मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली कि इसका अगर बदला न लिया तो ब्राह्मणकी औलाद ही नहीं ! अब शायद कुछ-कुछ समझ गये होगे ? पर थोड़ी-सी और सुन लो। सारी बातें सुनकर तुम बहुत खुश होगे। इसके अन्दर एक रस है, काव्यसे भी बढ़कर !

"सुनो, तुम तब कालेजमें पढ़ते थे। तुम्हारे घरके पास ही विप्रदास चटर्जीका मकान था। बेचारा बड़ा भला-मानस था। अब मर चुका है। चटर्जी महाशयके घर कुसुम नामकी एक बेचारी बाल-विधवा अनाथा कायस्थकी लड़की आश्रित रूपमें रहती थी। लड़की बड़ी सुन्दर थी। बेचारा बूढ़ा ब्राह्मण कालेजके लड़कोंकी निगाहसे उसे बचाये रखनेके लिए जरा दुश्चिन्ताग्रस्त हो गया था। पर, बूढ़े आदमीको चकमा देना किसी भी लड़कीके लिए मामूली-सी बात है। लड़की अकसर कपड़े सुखाने छतपर जाया करती; और तुम्हें भी शायद छतपर

बिना गये पाठ याद न होता था। छतपरसे तुम दोनोंमें कोई बातचीत होती थी या नहीं, यह तो तुम्हीं जानो; पर लड़कीका रंग ढंग देखकर बूढ़ेके मनमें शक जरूर हुआ; क्योंकि काम-धन्धेमें लड़कीसे अकसर भूलें होने लगीं, और तपस्विनी गौरीकी तरह दिनों-दिन उसका अन्न-जल भी छूटने लगा। किसी-किसी दिन शामको ऐसा हो जाता कि बूढ़ेके सामने ही अकारण उमड़ते हुए आँसू उससे रोके न रुकते।

"आखिर बूढ़ेने आविष्कार किया कि छतपर तुम दोनोंमें वक्त बेवक्त नीरव भेंट-मुलाकात हुआ करती है। यहाँ तक कि तुम कालेजमें गैरहाजिरी करके दोपहरको छतके एक कोनेमें जीनेके छज्जेकी छायामें बैठकर किताबके पन्ने उलटा करते थे; निर्जन स्थानमें बैठकर अध्ययन-मनन करनेका उत्साह सहसा तुम्हारा इतना बढ़ गया था! विप्रदास जब मेरे पास सलाह लेने आया, तो मैंने कहा, 'चाचा, तुम तो काशीजी जानेकी सोच रहे थे, लड़कीको मेरे पास छोड़कर तुम तीर्थ-वास करने चले जाओ, मैं उसका भार अपने ऊपर लेता हूं।'

"विप्रदास तीर्थ करने चला गया। मैंने उस लड़कीको श्रीपति चटर्जीके घर रखकर उसको लड़कीका बाप मशहूर कर दिया। उसके बाद जो हुआ, सो तुम जानते ही हो। सचमुच, तुमसे शुरूसे अन्त तक सब बातें कहनेमें बड़ा आनन्द आया। जैसे कोई कहानी हो। तबीयत तो मेरी ऐसी हो रही है कि इसे पूरी लिखकर एक किताब छपाऊँ, पर मुझे लिखना नहीं आता। मेरा भतीजा, सुनता हूं, थोड़ा-बहुत लिखा करता है; उसीसे लिखानेका

इरादा है। पर तुम और वह दोनों मिलकर लिखो तो सबसे अच्छा हो; क्योंकि कहानीका उपसंहार मुझे अच्छी तरह नहीं मालूम।"

हेमन्तने प्यारीशंकरकी इन अन्तकी बातोंपर विशेष ध्यान नहीं दिया; बोला—"कुसुमने इस ब्याहमें कोई आपत्ति नहीं की?"

प्यारीशंकरने कहा—"उसे आपत्ति थी या नहीं, समझना बड़ी टेढ़ी खीर थी। जानते हो बेटा, औरतोंका मन ठहरा, जब 'ना' कहें तो 'हाँ' समझना चाहिए। पहले-पहल तो नये मकानमें आकर तुम्हें न देख सकनेके कारण कैसी पागल-सी हो गई। और तुमने भी न-जाने कैसे पता लगा ही लिया उस मकानका। अकसर किताबें हाथमें लिये कालेज जाते समय तुम रास्ता भूल जाया करते; और श्रीपतिके मकानके सामने न-जाने क्या ढूँढ़ा करते! ठीक प्रेसिडेन्सी-कालेजका रास्ता ढूंढ़ते हो, ऐसा तो नहीं जान पड़ता था। कारण, किसी भले-आदमीके घरके जंगलेसे सिर्फ कीट-पतंगों और उन्मत्त युवकोंके हृदयके लिए ही रास्ता हुआ करता है। यह सब देख-सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। देखा कि तुम्हारी पढ़ाईमें बहुत हर्ज हो रहा है, और लड़कीकी हालत भी दिनों-दिन बिगड़ती ही जा रही है।

"एक दिन कुसुमको बुलाकर मैंने कहा, 'बिटिया, मैं बूढ़ा आदमी हूं, मुझसे शरमानेकी जरूरत नहीं; तू जिसे मन-ही-मन चाहती है, उसे मैं जानता हूं। वह लड़का भी मिट्टी हुआ जा रहा है, और तू भी। मेरा इरादा है कि दोनोंका मेल करा दूं।' सुनते ही कुसुम सहसा छाती फाड़कर रो उठी; और तेजीसे

उठकर भाग गई। इसी तरह अकसर कभी-कभी शामको श्रीपतिके घर जा-जाकर कुसुमको बुलाता और तुम्हारा जिकर कर-करके उसकी शरम छुड़ाता। अन्तमें उसकी शरम छूट गई। और अकसर, रोज जा-जाकर लगातार बातें कर-करके मैंने उसे समझा दिया कि ब्याहके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं; इसके सिवा दोनोंके मिलनका कोई मार्ग ही नहीं। कुसुमने कहा, 'कैसे होगा?' मैंने कहा, 'कुलीनकी कन्या बताकर चला दूंगा।' काफी बहस होनेके बाद उसने तुम्हारी राय जानना चाही। मैंने कहा, 'वह तो वैसे ही पागल-सा हो रहा है, उससे ये सब गड़बड़ीकी बातें कहनेसे फायदा? बिना आपत्तिके शान्तिसे काम हो जाना ही दोनोंके लिए अच्छा है। खासकर, जब कि इस बातके खुल जानेका कोई डर ही नहीं, तो फिर खामखाह क्यों उस बेचारेको जिन्दगी-भरके लिए परेशानीमें डाला जाय?'

"कुसुम क्या समझी, क्या नहीं समझी, मैं कुछ समझ न सका। वह कभी रोती और कभी चुप बैठी रहती। अन्तमें मैं जब कहता, 'तो जाने दे', तो फ़िर वह अधीर हो उठती। अन्तमें श्रीपतिके ज़रिये तुम्हारे पास ब्याहका प्रस्ताव भिजवाया। मैंने देखा, अपनी तरफसे चटसे राय देनेमें तुमने जरा भी देर न लगाई। और तब, ब्याहकी बात पक्की हो गई।

"ब्याहके एक दिन पहले कुसुम ऐसी बिखरी कि बटोरना दुशवार हो गया! वह पैरों पड़ने लगी, बोली, 'नहीं ताऊजी, ऐसा मत करो।' मैंने कहा, 'कैसी पगली है तू, सब-कुछ तय हो चुका, अब कहीं बात लौटाई जा सकती है!' कुसुम बोली, 'तुम

जाहिर कर दो कि अचानक रातको वह मर गई ; और यहाँसे कहींको रवाना कर दो मुझे।' मैंने कहा, 'उस लड़केकी क्या दशा होगी। उसकी बहुत दिनोंकी आशा कल पूरी होगी, यह जानकर वह स्वर्गमें बैठा हुआ है। आज मैं अचानक उसके पास तुम्हारे मरनेकी खबर दूं ; और उसके दूसरे ही दिन फिर तुम्हारे पास उसके मरनेकी खबर पहुंचाने आऊँ ! और फिर, उसी दिन शामको मेरे पास तुम्हारे मरनेका समाचार आये, क्यों ? मैं क्या इस बुढ़ौतीमें स्त्री-हत्या और ब्रह्म-हत्या कराने बैठा हूं ?'

"उसके बाद, शुभ लग्नमें शुभ विवाह सम्पन्न हो गया। मैं अपने एक कर्तव्यकी जुम्मेदारीसे बरी हुआ। फिर क्या हुआ, सो तो तुम जानते ही हो।"

हेमन्तने कहा—"हम लोगोंका जो कुछ करना था, सो तो आप कर ही चुके थे, फिर इस बातको जाहिर क्यों किया ?"

प्यारीशंकरने कहा—"मैंने देखा कि तुम्हारी छोटी बहनके ब्याहकी बातचीत सब पक्की हो चुकी है। तब मन-ही-मन सोचने लगा, एक ब्राह्मणकी जात तो बिगाड़ चुका, पर वह तो सिर्फ कर्त्तव्य समझकर ; अब जो दूसरे एक ब्राह्मणकी जात जा रही है, उसमें मेरा कर्त्तव्य है कि उसकी रक्षा करूं। इसीलिए उन लोगोंको चिट्ठी लिख दी। उसमें लिख दिया कि हेमन्तने शूद्रकी लड़कीसे ब्याह किया है, इसका मेरे पास सबूत है।"

हेमन्तने बड़ी मुश्किलसे धीरज रखके कहा—"अब अगर मैं उसे छोड़ दूं, तो क्या दशा होगी उसकी ? आप उसे आश्रय देंगे ?"

प्यारीशंकरने कहा—"मेरा जो काम था, सो मैं पूरा कर चुका।

अब दूसरेकी छोड़ी-हुई स्त्रीका पोषण करना मेरा काम नहीं। अरे, कोई है, हेमन्त बाबूके लिए जरा बरफ डालकर एक गिलास डाबका पानी तो ले आ। और पान भी ले आना!"

हेमन्त इस तरावटकी खातिरदारीकी परवाह किये बगैर ही वहाँसे चल दिया।

४

कृष्णपक्षकी पंचमी है; अँधेरी रात। चिड़ियोंका चुहचुहाना बन्द है। तालाबके किनारे खड़े लीचीके पेड़ोंने मानो काले चित्रपटपर गहरी स्याहीका लेप-सा कर दिया है। सिर्फ दखिनी हवा इस अँधेरेमें अन्धेकी तरह घूम-फिर रही है; अँधेरेने मानो उसे पकड़ लिया हो। आकाशके तारे टकटकी लगाये सतर्कदृष्टिसे अँधेरेको चीरकर न-जाने किस रहस्यका आविष्कार करना चाहते हैं।

हेमन्तके सोनेके कमरेमें आज दीआ नहीं जलाया गया है। हेमन्त खिड़कीके पास पलंगपर बैठा हुआ सामनेके घने अँधेरेकी ओर देख रहा है। और कुसुम जमीनपर, दोनों हाथोंसे उसके पैर पकड़कर, उसके पाँवोंपर अपना माथा रखे पड़ी है। समय मानो स्तम्भित समुद्रकी तरह स्थिर हो गया है। मानो अनन्त निशीथिनीके ऊपर अदृष्ट-चित्रकार विधाताने यह एक चिरस्थायी चित्र खींच दिया हो। चारों ओर प्रलय है, बीचमें एक विचारक है और उसके पैरोंके पास एक अपराधिनी।

फिर वही चप्पलकी चट्‌चट्‌ आवाज हुई। हरिहर मुखर्जीने दरवाजेके पास आकर कहा—"बहुत देर हो चुकी, अब और वक्त नहीं दे सकता। बहूको घरसे निकाल बाहर करो!"

कुसुमने इन शब्दोंके सुनते ही क्षण-भरके लिए, एक बार चिर जीवनकी साध मिटानेके लिए, हेमन्तके पाँव और भी दूने आवेगसे जकड़ लिये; और उन्हें चूमकर, पाँवोंकी धूल माथेसे लगाकर, पाँव छोड़ दिये।

हेमन्तने उठकर पितासे जाकर कहा—"अपनी विवाहित स्त्रीको मैं नहीं त्याग सकता।"

हरिहरने गरजकर कहा—"तो क्या जात खोयेगा?"

हेमन्तने कहा—"जात-पाँत मैं नहीं मानता।"

"तो जा, तू भी निकल जा!"

निशीथमें

"डाक्टर! डाक्टर!"

नाकमें दम कर दिया। यह भी कोई वक्त है, आधी रातको!

आँखें खोलीं, तो देखा कि अपने जमींदार साहब पधारे हैं, दक्षिणाचरण बाबू! भड़भड़ाकर उठ बैठा। टूटी पुश्तकी पुश्तैनी कुरसी खींचकर उन्हें बैठनेके लिए कहा; और घबराहटके साथ उनके चेहरेकी तरफ देखने लगा।

घड़ीकी तरफ देखता हूं तो ढाई बजे हैं!

चेहरा उनका सफेद-फक पड़ गया है; आँखें बाहर निकली आ रही हैं। घबराहटके साथ कहने लगे—"आज रातको फिर वही उपद्रव शुरू हो गया, डाक्टर, तुम्हारी दवा कुछ भी काम नहीं करती।"

मैंने जरा सङ्कोचके साथ कहा—"शायद आपने शराबकी मात्रा फिर बढ़ा दी है ?

दक्षिणाचरण बाबू बहुत नाराज हुए। बोले—"यह तुम्हारा कोरा भ्रम है। शराब नहीं; – शुरूसे आखिर तक पूरा किस्सा सुने बगैर तुम असली वजह समझ नहीं सकते।"

ताकमें टीनकी छोटी-सी किरासिन-तेलकी बत्ती टिमटिमा रही थी; मैंने उसकी बत्ती जरा उकसा दी। बत्ती कुछ जाग उठी; और खूब धुआँ उगलने लगी। बदनपर धोतीका पल्ला डालकर मैं एक अखबार-बिछे चौड़के बकसपर बैठ गया। दक्षिणाचरण बाबू कहने लगे :—

मेरी पहली स्त्रीके समान घर-सम्हालनेवाली गृहणी मिलना बहुत ही दुशवार है। मगर मेरी उमर तब ज्यादा नहीं थी; और उस उमरमें, तुम जानते हो, तबीयतमें रस-रंग कुछ ज्यादा होता ही है। उसपर फिर काव्य-शास्त्रका भी काफी अध्ययन किया था। इसलिए सिर्फ घर-सम्हालनेवाली गृहणीसे मेरा मन नहीं भरता था। अकसर मुझे कालिदासका वह श्लोक याद आया करता—'गृहणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कला-विधौ।' मगर मेरी गृहणीपर उस ललित-कला-विधिका कोई भी उपदेश काम नहीं करता था; और जब-कभी मैं सखी-भावसे उनसे प्रणय-सम्भाषण करता, तो वे उस बातको हँसीमें उड़ा देतीं। गंगाके स्रोतमें जैसे इन्द्रका ऐरावत परेशान हुआ था, ठीक वैसे ही, उनकी हँसीके सामने बड़े-बड़े काव्यके टुकड़े और प्रेमके अच्छे अच्छे सम्भाषण क्षणमें अपनी जगहसे गिरकर चूर-चूर हो जाया

करते। सचमुच, उनकी हँसीमें ऐसी ही एक अद्भुत शक्ति थी!

उसके बाद, आज चार वर्ष हुए, मुझे एक खतरनाक बीमारीने बुरी तरह घेर लिया। पहले तो ओठपर जहरीला फोड़ा हुआ, फिर सन्निपात। मरने तककी नौबत आ गई थी, बचनेकी कोई आशा ही नहीं थी। एक दिन तो ऐसा हुआ कि डाक्टर भी जवाब दे गये। इतनेमें मेरे एक रिश्तेदार कहींसे किसी ब्रह्मचारीको पकड़ लाये। उसने गायके घीके साथ मुझे कोई जड़ी खिला दी। चाहे जड़ीसे समझो या मेरी तकदीरसे, मैं उस बार बाल-बाल बच गया।

उस बीमारीमें मेरी स्त्री दिन-रात जी-जानसे सेवा करती रही; क्षण-भरके लिए भी उसने जरा विश्राम नहीं किया। बीमारीके वक्त कई दिनों तक एक अबला स्त्री मनुष्यकी मामूली शक्ति लेकर अपनी जानपर खेलकर जबरदस्त आग्रह और व्याकुलताके साथ द्वारपर आये-हुए जमदूतोंसे लगातार लड़ती रही। उसके सारेके सारे प्रेमने, सम्पूर्ण हृदयने, अथक परिश्रम और बड़ी-बड़ी कोशिशोंसे मेरे इस अयोग्य प्राणको मानो माकी छातीसे चिपटे हुए दुधमुँहे बच्चेकी तरह छिपाकर बचा लिया। खाना नहीं, पीना नहीं, सोना नहीं, – मेरे सिवा संसारकी और-किसी भी चीजकी तरफ उसका ध्यान नहीं था।

अन्तमें जमदूतोंको ही, हारे-हुए शेरकी तरह, मुझे मैदानमें छोड़कर चला जाना पड़ा; लेकिन जाते वक्त वे मेरी स्त्रीपर जोरका एक पंजा जमा ही गये।

मेरी स्त्री उन दिनों गर्भवती थी। थोड़े दिन बाद उसके एक

मरी हुई सन्तान हुई। उसके बादसे ही उसे एकसाथ कई जटिल बीमारियोंने घेर लिया। तब फिर, मैंने उसकी सेवा करना शुरू कर दिया। इससे वह बहुत ही चंचल और परेशान हो उठी। कहने लगी—"अरे, ये क्या कर रहे हो तुम, लोग क्या कहेंगे? इस तरह दिन-रात तुम मेरे कमरेमें मत आया-जाया करो।"

रातको अगर कहीं, इस ढंगसे कि अपने लिए ही हवा कर रहा हूं, उसके माथेपर हवा करने लगता, तो चटसे वह हाथसे पंखा छीन लेती। किसी दिन अगर उसके पास रहनेके कारण मुझे खाने-पीनेमें दस-पाँच मिनटकी देर हो जाती, तो वह भी उसके लिए परेशानीका सबब बन जाती; और वह वक्तपर खाने-पीनेके लिए निहोरे करने लगती। जरा-सी सेवा की नहीं कि चटसे नाराज हो जाती। वह कहा करती थी—"मरदोंको इतनी अतिकी नहीं करनी चाहिए।"

हमारा वह बराहनगर-वाला मकान शायद तुमने देखा होगा। मकानके सामने ही बगीचा है, और बगीचेके सामने गंगा बह रही है। हमारे खास कमरेके नीचे ही दक्षिणकी तरफ थोड़ी-सी खाली जमीन है; उसे मेरी स्त्रीने अपनी पसन्दके माफिक अपने हाथसे मेहदीके पौधोंसे घेरकर मजेका एक छोटा-सा बगीचा बना लिया था। बगीचे-भरमें वही एक जगह थी जो बिलकुल सीधी सादी और निहायत देशी ढंगकी थी। यानी, उसमें खुशबूकी बनिस्बत खुशरंगकी बहार और फूलोंकी बनिस्बत पत्तोंकी विचित्रता ज्यादा नहीं थी; न गमलोंमें बिलकुल मामूली पौधेके बगलमें खपाचीके सहारे कागजकी बनी 'लैटिन' नामकी जयपताका ही

फहराती थी। वहाँ तो बेला, जूही, गुलाब, गन्धराज, करवी और रजनीगन्धाका ठाठ ही ज्यादा था। एक खूब-बड़ा मौलसिरीका पेड़ था, जिसके नीचे संगमरमरका बड़ा सुहावना चबूतरा बना हुआ था। तन्दुरुस्तीकी हालतमें वह खुद खड़ी रहकर सुबह-शाम उसे अच्छी तरह धुलवाकर साफ करा लिया करती थी। गरमियोंमें शामके वक्त काम-काजसे छुट्टी मिलनेपर वही उसके बैठनेकी खास जगह थी। वहाँसे गंगा दिखाई देती थी; पर गंगामें नावोंपर हवाखोरी करनेवाले बाबू लोग उसे नहीं देख सकते थे।

खाटपर पड़े-पड़े उसे बहुत दिन हो गये थे। एक दिन चैतकी चाँदनी रातको उसने कहा—"घरके भीतर बन्द पड़े-पड़े मेरा जी घबरा उठा है; आज मुझे एक बार मेरे बगीचेमें ले चलो वहाँ जरा बैठूंगी।"

मैं उसे बड़ी सावधानीसे पकड़कर धीरे-धीरे उस मौलसिरीके नीचे ले गया; और आहिस्तेसे उस चबूतरेपर लिटा दिया। मैं अपनी जाँघपर ही उसका सिर रख सकता था; पर मैं जानता था कि यह बात उसे जरा-कुछ अनोखी-सी मालूम होगी; इसलिए एक तकिया लाकर उनके सिरके नीचे रख दिया।

ऊपरसे दो-दो एक-एक मौलसिरीके खिले हुए हलके फूल झर रहे थे; और पेड़की डालियोंकी संधोंमेंसे पत्तोंकी छाया-शुदा चाँदनी आकर उसके मुरझाये हुए चेहरेपर पड़ रही थी। चारों तरफ प्रकृति बिलकुल शान्त स्थिर और निस्तब्ध थी। मैं उस खुशबूसे महकते हुए अन्धकारमें, पास बैठा हुआ, चुपचाप उसके

चेहरेकी तरफ देख रहा था। न-जाने क्यों, मेरी आँखें डबडबा आईं।

मैंने धीरेसे और-भी पास जाकर अपने दोनों हाथोंसे उसका एक गरम हाथ उठा लिया। इसपर उसने कोई ऐतराज नहीं किया। कुछ देर तक इसी तरह चुपचाप बैठा रहा। थोड़ी देर बाद, मेरा हृदय-मन यकायक भीतरसे उमड़-सा उठा; मेरे मुंहसे अचानक निकल पड़ा—"तुम्हारा प्रेम मैं कभी नहीं भूलूँगा!"

मैं उसी वक्त समझ गया कि यह बात कहनेकी कोई जरूरत नहीं थी। मेरी स्त्री मुसकराकर रह गई। उस मुसकराहटमें गुदगुदी पैदा करनेवाली एक तरहकी लज्जा थी, शर्म थी, सुख था, आनन्द था; और कुछ-कुछ अविश्वासकी झलक भी थी। साथ ही, मजाककी काफी तेज धार भी हो तो ताज्जुब नहीं।

मेरी बातके जवाबमें मुँहसे एक लब्ज भी न कहकर सिर्फ मुसकराहटसे उसने जता दिया कि 'कभी न भूलोगे, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता; और मैं ऐसी उम्मीद भी नहीं करती।'

उस मीठी-मुलायम और तेज-पैनी मुसकराहटके डरसे ही मैं कभी अपनी स्त्रीके साथ जी खोलकर प्रेम-प्यारकी बातें करनेकी हिम्मत न कर सका। उसके पीठ-पीछे बहुत-सी प्यारकी बातें मेरे मनमें उठा करतीं, पर उसके सामने पहुंचते ही वे बिलकुल फालतू-सी मालूम होने लगतीं। छापेके अक्षरोंमें जिन बातोंके पढ़नेसे दोनों आँखोंसे छलछल धारा बहने लगती है उन बातोंको मुंहसे कहनेमें क्यों हँसी आती है, इतनी उमर हो गई, आज तक इस रहस्यको मैं नहीं समझ पाया।

मुँहसे कोई कुछ बोले तो उसपर बहस की जा सकती है ; पर मुसकराहटपर तो कोई तर्क नहीं किया जा सकता। इसलिए उस वक्त मुझे चुप ही रह जाना पड़ा। इतनेमें उधर एक कोयलने 'कुहू-कुहू'की लड़ी बाँध दी। मैं चंचल हो उठा, बैठा-बैठा, सोचने लगा, ऐसी चाँदनी रातमें पिक-वधूके कान क्या बहरे हो गये हैं ?

बहुत-बहुत इलाज कराये, पर उसका रोग किसी भी तरह गया नहीं। डाक्टरने कहा—"एक बार कहीं हवा बदलने ले जाइये। देखिये, शायद कुछ फर्क पड़े।"

मैं स्त्रीको लेकर इलाहाबाद चला गया।

कहते-कहते दक्षिणाचरण बाबू यकायक रुक गये ; और सन्देह की निगाहसे मेरे मुँहकी तरफ देखने लगे। उसके बाद दोनों हथेलियोंपर माथा टेककर न-जाने क्या सोचने लगे। मैं भी चुप बैठा रहा। आलेमें किरासिनका लैम्प टिमटिमा रहा था ; और निस्तब्ध कमरेमें मच्छड़ोंकी भनभनाहट साफ सुनाई दे रही थी। सहसा मौन भङ्ग करके उन्होंने फिर कहना शुरू किया :—

वहाँ डाक्टर हारानचन्द्र मेरी स्त्रीका इलाज करने लगे।

बहुत दिनों तक इलाज होता रहा। कोई फर्क नहीं मालूम हुआ। अन्तमें, खुद हैरान होकर और हमें परेशान करके एक दिन डाक्टरने भी कह दिया, और मैं भी समझ गया कि मेरी स्त्रीकी बीमारी अच्छी होनेकी नहीं ; और साथ ही मेरी स्त्री भी समझ गई कि उसे जिन्दगी-भर इसी तरह रोगी ही बना रहना पड़ेगा।

आखिर, एक दिन स्त्रीने मुझसे कह ही दिया—"जब कि बीमारी अच्छी ही नहीं होनेकी, और जल्दी मरनेकी भी कोई उम्मीद नहीं, तो फिर तुम कब तक इस 'अधमरी-अधजीयी' के साथ अपनी जिन्दगी बरबाद करते रहोगे? तुम दूसरा ब्याह कर लो।"

उसने यह बात ऐसे सरल स्वभावसे कही कि मानो वह महज एक सुयुक्ति और विवेकपूर्ण अच्छी सलाह हो। उसमें कोई बड़ी भारी महत्ता, वीरता या असाधारण कोई बात हो, ऐसा भाव उसके लेशमात्रको भी न था।

अब मेरे मुसकरानेकी पारी थी; पर मुझमें वैसी मुसकरानेकी शक्ति कहाँ? मैं उपन्यासके प्रधान नायककी तरह गंभीरताके साथ ऊँचे स्वरमें कहने लगा—"जब तक इस देहमें प्राण हैं—"

उसने बीच ही में टोककर कहा—"बस बस; रहने दो, और आगे न बढ़ो। तुम्हारी बातें सुनकर तो मेरा मरनेको ही जी चाहता है!"

मैंने तुरत पराजय स्वीकार न करके कहा—"इस जीवनमें मैं और-किसीको भी प्यार नहीं कर सकता।"

सुनकर मेरी स्त्री जोरसे हँस पड़ी; और तब मुझे रुक जाना पड़ा।

मालूम नहीं, तब मैंने अपने-आप भी कभी साफ मंजूर किया है या नहीं, पर अब समझ रहा हूं कि फिरसे उसके तन्दुरुस्त होने की कोई उम्मीद न होनेसे, सेवा या तीमारदारी करनेमें अपने अन्दर मैं थकान महसूस कर रहा था। अलबत्ता इस कामसे

जी चुरानेकी बात मेरे मनमें कभी नहीं आई, पर साथ ही जिन्दगी-भर इस हमेशा-बीमारके साथ रहनेकी कल्पना भी मेरे लिए कुछ कम दर्दनाक नहीं थी। हाय-हाय, जवानीकी शुरूआतमें जब मैं सामने देखता था तो मुझे प्रेमके मायाजालमें, सुख और आराम पानेकी तसल्लीमें, सौन्दर्यकी मरीचिकामें अपना साराका सारा भविष्य-जीवन खिले-हुए खुशबूदार फूलकी तरह खुश दिखाई देता था; पर आजसे, शुरूसे लेकर आखीर तक, अपनी जिन्दगी मुझे केवल एक असीम और आशाहीन तृष्णाकी मरुभूमि मालूम होने लगी।

मेरी सेवामें भीतरकी उस थकानको शायद उसने देख लिया था। तब मैं नहीं जानता था, पर अब मुझे रत्ती-भर भी सन्देह नहीं कि उसने मुझे युक्ताक्षर-हीन बच्चोंकी 'पहली पुस्तक' की तरह साफ पढ़ समझ लिया था। इसीलिए, जब मैं उपन्यासके नायककी तरह अपनेको तैयार करके उनके सामने कवित्व बघारने जाता, तो वे ऐसे गम्भीर स्नेह और साथ ही अनिवार्य कौतुकके साथ मुसकरा देतीं कि मुझसे कुछ जवाब देते नहीं बनता था। खुद मेरे अन्दरकी बात, जिसे मैं भी नहीं जान पाता था, अन्तर्यामीकी तरह सब समझ जाती थी। उन बातोंका ख्याल आते ही, अब भी कभी-कभी, मारे शरमके मेरी आत्म-घात करनेकी इच्छा होती है।

डाक्टर हारान मेरी बिरादरीके थे। उनके घर अकसर मेरा न्योता हुआ करता था। कुछ दिन जाने-आनेके बाद डाक्टरने अपनी लड़कीके साथ मेरी जान-पहचान करा दी। लड़की

अविवाहिता थी। उमर पन्द्रहके लगभग होगी। डाक्टरका कहना था कि वे अपनी पसन्दका कोई अच्छा लड़का न मिलनेसे अब तक उसका ब्याह नहीं कर सके हैं। मगर बाहर-वालोंसे यह सुननेमें आता था कि लड़कीके कुलमें कुछ दोष है।

इसके सिवा और कोई दोष नहीं था। जैसा सुरूप था वैसी ही सुशिक्षा। देखनेमें बहुत सुन्दर, और बातचीत, रहन-सहन, तहजीब, लगभग सभी बातोंमें तारीफके काबिल थी वह। यही वजह थी कि बीच-बीचमें किसी-किसी दिन उसके साथ बातचीत और गपशप करते-करते मुझे घर लौटनेमें रात हो जाती; यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्रीको दवा पिलानेका वक्त भी निकल जाया करता। उसे मालूम रहता है कि मैं डाक्टरके घर गया हूं; पर देरी होनेका सबब उसने एक दिन भी मुझसे नहीं पूछा।

अपनी जिन्दगीके रेगिस्तानमें मैं फिर एक बार मरीचिका देखने लगा। तृष्णा जब छाती तक थी, आँखोंके सामने तब किनारे-तक भरा-हुआ साफ-सुथरा ठंडा पानी छलकने और लहराने लगा। और तब मैं अपने मनको जी-जानसे वापस खींचनेपर भी रोक या फेर नहीं सका।

मरीजका कमरा मेरे लिए पहलेसे दूना निरानन्द और बेमजा हो गया। फिर तो अकसर रोज ही मरीजकी सेवा करने, दवा पिलाने और पथ्यादि देनेके सभी नियम भंग होने लगे।

हारान डाक्टर अकसर मुझसे कहा करते थे कि 'जिनकी बीमारी कभी अच्छी नहीं होनेकी, उन्हें तो मर जाने ही में

आराम है। क्योंकि जीनेमें न तो उन्हें खुद ही कुछ आराम है और न घरवालोंको।' मामूली तौरपर यह बात कही जाती तो कोई खास बात नहीं थी। पर मेरी स्त्रीकी तरफ लक्ष्य करके उन्हें यह बात न कहनी चाहिए थी। मगर आदमीके मरने-जीनेके विषयमें डाक्टरोंका मन इतना उदासीन और इतना जड़ या पुख्ता होता है कि वे मरीजके घरवालोंके मनकी हालत ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकते।

अचानक एक दिन बगलवाले कमरेसे मैंने सुना, मेरी स्त्री डाक्टरसे कह रही थी—"डाक्टर साहब, इतनी फालतू दवाएँ पिला-पिलाकर दवाखानेका कर्ज क्यों बढ़वा रहे हैं? मेरी जान ही जब एक बीमारी बन गई है, तो फिर ऐसी कोई दवा क्यों नहीं दे देते कि प्राण ही निकल जायँ और जंजाल दूर हो।"

डाक्टरने कहा—"छिः, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।"

बात सुनकर सहसा मेरी छातीमें धधका-सा बैठ गया, बड़ी चोट पहुंची। डाक्टरके चले जानेपर मैं उस कमरेमें जाकर खाटकी पाटीपर बैठ गया; और उसके माथेपर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा। उसने कहा—"इस कमरेमें तो बड़ी गरमी है, तुम बाहर चले जाओ। तुम्हारा घूमने जानेका वक्त भी हो गया है! थोड़ी देर घूम-फिरकर आओगे तो रातको भूख भी लग आयेगी, कुछ खा-पी भी लोगे।"

घूमने जानेके मानी थे डाक्टरके घर जाना। मैंने ही उसे समझा दिया था कि भूख लगनेके लिए थोड़ा-बहुत टहलना जरूरी है। अब मैं निश्चयसे कह सकता हूं कि वह मेरी इस रोजकी

बहानेबाजीको खूब समझती थी। मैं ही मूर्ख था, जो समझता था कि वह भोलीभाली थी।

इतना कहकर दक्षिणाचरण बाबू फिर बहुत देर तक हथेलीपर माथा टेके चुप बैठे रहे। अन्तमें बोले—"एक गिलास पानी लाओ, प्यास लगी है।" पानी पीकर फिर कहने लगे :—

एक दिन डाक्टरकी लड़की मनोरमाने मेरी स्त्रीको देख आनेकी इच्छा जाहिर की। मालूम नहीं क्या वजह थी, उसकी बात मुझे रुची नहीं। मगर नाहीं करनेकी भी कोई वजह नहीं थी। आखिर वह एक दिन शामको हमारे यहाँ चली ही आई।

उस दिन, मेरी स्त्रीको और-दिनोंसे कुछ ज्यादा तकलीफ थी। जिस दिन उसे ज्यादा तकलीफ होती उस दिन वह बहुत ही शान्त रहती ; सिर्फ बीच-बीचमें मुट्ठी बँध जाती और चेहरा नीला पड़ जाता। इसीसे उसकी तकलीफका अन्दाजा लगता था। किसी तरहकी आहट नहीं थी ; मैं खाटकी पाटीपर शान्त बैठा था। उस दिन उसमें इतना भी दम न था कि मुझसे घूम आनेके लिए आग्रह कर सके। और, हो सकता है कि ज्यादा तकलीफके वक्त वह भीतरसे चाहती हो कि मैं उसके पास बना रहूं। आँखोंको चकाचौंध न लगे इस खयालसे लालटेन दरवाजेकी आड़में रख दी गई थी। कमरेमें अँधेरा और सन्नाटा था। सिर्फ बीच-बीचमें भीतरकी पीड़ा और तकलीफ कुछ कम होनेपर उसका गहरा दीर्घनिःश्वास सुनाई देता था।

ठीक इसी समय, मनोरमा आकर दरवाजेके पास खड़ी हो गई। बगलसे लालटेनका थोड़ा-सा उजाला उसके चेहरेपर पड़ा।

उस अँधेरे-उजालेमें कुछ देर तक कमरेके भीतरका कुछ दिखाई न देनेसे वह वहीं खड़ी-खड़ी इधर-उधर करने लगी।

मेरी स्त्री चौंक पड़ी; और मेरा हाथ थामकर पूछ उठी—"वो कौन ?" अपनी उस कमजोरीकी हालतमें यकायक अनजान आदमीको देखकर वह डर गई थी। अस्फुटस्वरमें उसने दो-तीन बार पूछा—"वो कौन ? कौन है वो, बताओ ?"

मुझसे कैसी जबरदस्त बेवकूफी हुई कि मैं चटसे कह बैठा—"मैं नहीं जानता।" बात मुँहसे निकली ही थी कि मानो किसीने चाबुक-सा मारा। दूसरे ही क्षण मैंने कहा—"अरे, ये तो अपने डाक्टर साहबकी लड़की मालूम होती हैं।"

स्त्रीने एक बार मेरे मुँहकी ओर गौरसे देखा,-मुझसे उनके चेहरेकी तरफ देखा नहीं गया,-और दूसरे ही क्षण उसने बहुत ही धीमे स्वरमें अपने घरपर आये-हुए अतिथिसे कहा—"आइये, आप भीतर आइये।" और मुझसे कहा—"लालटेन उठा लो जरा।"

मनोरमा भीतर आकर बैठ गई। उसके साथ मरीजकी धीरे धीरे बातचीत होने लगी। इतनेमें डाक्टर आ पहुंचे।

वे अपने दवाखानेसे दो शीशी दवा साथ ही ले आये थे। उन दोनों शीशियोंको निकालकर मेरी स्त्रीसे बोले—"इस नीली शीशीमें मालिशकी दवा है; और यह पीनेकी है। देखिये, कहीं दोनोंमें गड़बड़ मत कर लीजियेगा। इस दवामें जहर है !"

मुझे भी उन्होंने सावधान कर दिया; और शीशियाँ बगलकी टेबिलपर रख दीं।

जाते वक्त उन्होंने अपनी लड़कीको बुलाया।

मनोरमाने कहा—"बापूजी, मैं यहीं क्यों न रह जाऊँ ? यहाँ कोई औरत तो है नहीं, इनकी सेवा-टहल कौन करेगा ?"

मेरी स्त्री अत्यन्त चंचल हो उठी ; बोली—"नहीं नहीं, आप तकलीफ न कीजिये। पुरानी नौकरानी है, वह मुझे माकी तरह देखती-भालती है।"

डाक्टरने हँसते हुए कहा—"बेटी, ये लछमी हैं, लछमी ! हमेशासे दूसरोंकी सेवा करती आई हैं, अब दूसरोंसे सेवा इनसे ली नहीं जाती।"

लड़कीको लेकर डाक्टर जाना ही चाहते थे ; इतनेमें मेरी स्त्रीने कहा—"डाक्टर साहब, बन्द कमरेमें ये बहुत देरसे बैठे हुए हैं, इन्हें आप जरा बाहर घुमाने ले जाइये न !"

डाक्टरने मुझसे कहा—"आइये न, आपको जरा नदी-किनारे घुमा लाऊं।

मैं, पहले जरा ऐतराज करनेके बाद, चलनेको तैयार हो गया। कमरेसे निकलते वक्त डाक्टरने उन दोनों शीशियोंके बारेमें मेरी स्त्रीको फिरसे एक बार सावधान कर दिया।

उस दिन मैंने डाक्टरके घर ही खाया-पीया। लौटनेमें मुझे देर हो गई। घर आकर देखा कि मेरी स्त्री बुरी तरह तड़फ रही है। अनुतापसे लज्जित और जर्जरित होकर मैंने पूछा—"तुम्हारे तकलीफ क्या आज ज्यादा बढ़ गई क्या ?"

वह जवाब न दे सकी ; चुपचाप मेरे मुंहकी ओर देखने लगी। उसकी आवाज बन्द हो चुकी थी।

मैं उसी वक्त, रात ही को, घर जाकर डाक्टरको बुला लाया।

पहले तो, बहुत देर तक डाक्टरके कुछ समझ ही में न आया। अन्तमें उन्होंने पूछा—"वह दर्द क्या बहुत ज्यादा बढ़ गया है? एक बार दवाकी मालिश कर दी जाय तो ठीक रहे।"

कहकर उन्होंने टेबिलपरसे नीली शीशी उठाई; देखा तो, शीशी खाली!

मेरी स्त्रीसे उन्होंने पूछा—"आपने क्या गलतीसे यह दवा पी ली है?"

उन्होंने सिर्फ सिर हिलाकर जता दिया—हाँ।

डाक्टर उसी वक्त गाड़ीपर सवार होकर अपने घरसे पम्प लाने दौड़े। मुझे कुछ बेहोशी-सी आने लगी; और दूसरे ही क्षण मैं उसके बिस्तरपर लुढ़क पड़ा।

तब, मा अपने बीमार बच्चेको जिस तरह सान्त्वना देती है ठीक उसी तरह उसने मेरा सिर अपनी छातीसे लगाकर दोनों हाथोंके स्पर्शसे अपने मनकी बात समझानेकी कोशिश की। मुझे ऐसा लगा, मानो वह सिर्फ अपने करुण स्पर्शमात्रसे मुझसे बार-बार यही कह रही हो कि 'शोक मत करो, अच्छा ही हुआ, तुम सुखी होगे, यही सोचकर मैं सुखसे मर रही हूं।'

डाक्टर जब तक पम्प लेकर वापस आये, तब तक वहाँ जिन्दगीके साथ-साथ मेरी स्त्रीकी बीमारी और उसकी सारी तकलीफें हमेशाके लिए दूर हो चुकी थीं।

दक्षिणाचरणने फिर एक बार पानी पीकर कहा—"उफ्, बड़ी गरमी है!" और कहते हुए जल्दीसे बाहर बरंडेमें जाकर थोड़ा टहल आये; और फिर भीतर आकर बैठ गये। साफ समझ

पड़ता था कि वे खुद कुछ कहना नहीं चाहते, मानो मैं ही उनके सरपर जादूकी लकड़ी फेरकर उनसे सब बातें कहलवाये ले रहा हूं। उन्होंने फिर कहना शुरू किया :—

मनोरमाके साथ ब्याह करके मैं वहाँसे अपने घर कलकत्ता चला आया।

मनोरमाने अपने पिताकी सम्मतिसे मेरे साथ ब्याह किया था। मगर, मैं जब उससे प्यार करता, प्रेमकी बातें करके उसके हृदयपर कब्जा करनेकी कोशिश करता, तो वह न मुसकराती, न हँसती; गम्भीर बनी रहती। भला मैं कैसे समझता कि उसके मनमें कहाँ किस जगह कैसा खटका छिपा हुआ है?

इन्हीं दिनों मेरा शराब पीनेका नशा बहुत बढ़ गया।

एक दिन शरतऋतुके प्रारम्भमें शामको मनोरमाके साथ मैं बराहनगर-वाले बगीचेमें घूम रहा था। क्रमशः धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ता जाता था। चिड़ियोंके घोंसलोंमें पंख फटकारनेकी आहट तक बन्द हो चुकी थी। सिर्फ अगल-बगल घनी छायादार झाऊके पेड़ हवासे काँप रहे थे।

जरा-कुछ थकान मालूम होते ही मनोरमा उस मौलसिरीके पेड़के नीचे संगमरमरकी वेदीपर आकर अपनी बाँहपर सिर रखके लेट गई। मैं भी उसके पास बैठ गया।

वहाँ अँधेरा और-भी गाढ़ा था। वहाँसे जितना आकाश दीख पड़ता था उसमें तारे ही तारे छा रहे थे; और झींगुरोंकी झनकार ऐसी लग रही थी जैसे अनन्त आकाशकी छातीपरसे खिसकी हुई खामोशीकी साड़ीके नीचे आवाजकी एक बारीक पाड़ बुन रही हो।

उस दिन शामको मैंने शराब पीई थी, इससे मन जरा-कुछ तरल अवस्थामें था। आँखोंको अँधेरा जब बरदाश्त हो गया तो पेड़की छायाके नीचे पाण्डुवर्णसे अंकित शिथिल-अंचल उस थकी हुई रमणीकी धुँधली-सी मूर्तिने मेरे हृदयमें एक तरहके अनिवार्य आवेगका संचार कर दिया। मालूम हुआ, मानो वह एक छाया है, अपनी इन बाहोंसे मैं उसे किसी भी तरह बाँध नहीं सकता।

इतनेमें अन्धकारमय झाऊके पेड़की चोटीपर मानो आग-सी जल उठी। उसके बाद, कृष्णपक्षका जीर्णप्रान्त पीतवर्ण चन्द्रमा आहिस्ते-आहिस्ते आकाशमें ठीक पेड़के सिरपर उदित हुआ; और सफेद पत्थरपर सफेद साड़ी पहने हुए उस सोई हुई तरुणीके चाँद-से शान्त मुखड़ेपर चाँदनी आ पड़ी। फिर मुझसे रहा नहीं गया। पास जाकर अपने दोनों हाथोंसे उसके हाथ पकड़कर बोला—"मनोरमा, तुम मुझे विश्वास नहीं करतीं; पर मैं तुमसे प्रेम करता हूं, मैं तुम्हें हृदयसे चाहता हूं, मैं तुम्हें कभी भूल नहीं सकता।"

मुँहसे ये शब्द निकलते ही मैं चौंक उठा; याद आया कि ठीक यही बात मैंने और-भी एक दिन और-किसीसे भी कही है। उसी क्षण मौलसिरी और झाऊकी चोटियोंके ऊपरसे, कृष्णपक्षके पीतवर्ण भग्न-चन्द्रके नीचेसे, गंगाके इस पारसे लेकर सुदूर उस पार तक सर्वत्र 'हाः हाः, हाः हाः, हाः हाः' करती हुई बहुत ही तेजीसे एक हँसी उड़ी चली गई। वह मर्मभेदी हँसी थी या अभ्रभेदी हाहाकार, मैं नहीं कह सकता। मैं उसी क्षण पत्थरकी वेदीपरसे बेहोश होकर नीचे लुढ़क पड़ा।

होश आनेपर देखा कि अपने कमरेमें पड़ा हूं।

मनोरमाने पूछा—"अचानक तुम्हें ऐसा क्यों हो गया ?"

मैं काँप उठा, बोला—"सुना नहीं, तुमने ! सारे आकाशमें हा: हा:' करती हुई एक हँसी उड़ी चली गई !"

उसने हँसते हुए कहा—"वो हँसी थोड़े ही थी ! कतार बाँधे सारसोंका एक झुंड उड़ा जा रहा था। मैंने तो उन्हींके पंखोंकी आहट सुनी थी। तुम जरा-ज़रा-सी बातपर ऐसे डर जाते हो !"

दिनमें साफ समझमें आ गया कि जरूर वह पक्षियोंके ही उड़नेकी आवाज होगी ; क्योंकि इस समय उत्तर देशसे हंसोंकी पंक्ति नदीकी रेतीपर चरने आया करती है। मगर जैसे ही शाम होती, उस विश्वासको मैं खो बैठता। तब ऐसा मालूम होता जैसे चारों तरफ सम्पूर्ण अन्धकारमें वही हँसी जमी बैठी है, और ज़रा-सा कुछ मौका पाते ही यकायक अन्धकारको चीरती हुई आकाश-भरमें गूंज उठेगी। अन्तमें, ऐसा हो गया कि शामके बाद फिर मनोरमासे बात करनेकी मेरी हिम्मत ही न पड़ती।

एक दिन, अपने उस बगीचेवाले मकानको छोड़कर मनोरमाके साथ मैं मोटर-बोटपर बैठकर हवाखोरीके लिए निकल पड़ा। अगहनका महीना था, नदीकी खुली हवामें मेरा सब डर दूर हो गया। कई दिन खूब आनन्दसे बीते। चारों तरफके प्राकृतिक सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर मनोरमा भी मानो अपने हृदयके बन्द द्वार, बहुत दिनों बाद, आहिस्ते-आहिस्ते मेरे सामने खोलने लगी।

बोट गंगाकी धारा छोड़कर उसकी एक शाखामें होकर पद्मा नदीमें जा पहुंचा। भयंकरी पद्मा उस समय हेमन्तऋतुकी बाँबीमें

पड़ी भुजंगिनीके समान दुबली और निर्जीव होकर सुदीर्घ शीत-निद्रामें सो रही थी। उत्तरी किनारेपर जनशून्य तृणशून्य दिगन्त तक विस्तृत रेती धाँय-धाँय जल रही थी; और दक्षिणकी ऊँची पाड़पर छोटे-छोटे गाँवोंके आमके बाग उस राक्षसी नदीके लालायित मुँहके बिलकुल पास ही हाथ-जोड़े खड़े-खड़े काँप रहे थे। पद्मा नींदकी खुमारीमें एक-एक बार करवट लेती और विदीर्ण तटभूमि छप-छप-छपाक करती हुई धसक-धसक पड़ती।

यहीं घूमने-फिरनेकी मौज है, यह सोचकर वहाँ मैंने लंगर डलवा दिया।

एक दिन, हम दोनों टहलते-टहलते बहुत दूर चले गये। देखते-देखते डूबते-हुए सूरजकी सुनहरी आभा दिगन्तमें विलीन हो गई। शुक्लपक्षकी साफ-सुथरी चाँदनी खिल उठी। उस अन्तहीन चमकती-हुई सफेद रेतीपर शुभ्र चाँदनी जब अपना सम्पूर्ण रूप और यौवन लिये-हुए बेरोकटोक एकसाथ आकाशके सीमान्त तक फैल गई, तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे इस जनशून्य चन्द्रलोकके असीम स्वप्न-राज्यमें केवल हम ही दोनों विचरण कर रहे हैं। लाल रंगका दुशाला मनोरमाके माथेसे उतरकर उसके चेहरेको घेरे और सारे शरीरको ढके हुए नीचे तक लटक रहा था। निस्तब्धता जब और-भी निविड़ हो गई, सन्नाटा जब और-भी गहरा हो गया, सीमाहीन दिशाहीन शुभ्रता और शून्यताके सिवा जब और कुछ-भी बाकी न रहा, तब मनोरमाने दुशालेमेंसे धीरेसे अपना हाथ निकाला और मेरा हाथ पकड़के मसक दिया। बहुत ही पास आकर मानो वह अपने सम्पूर्ण तन-मन और जीवन

यौवनका सारा भार मुझे सौंपकर एकान्तरूपसे मुझ ही पर निर्भर होकर खड़ी हो गई। और मैं पुलकित हृदयसे सोचने लगा, 'बन्द घरमें कहीं मनमाना प्यार किया जा सकता है ? ऐसे खुले हुए मुक्त मैदान और अनन्त आकाशके बगैर एकसाथ दो प्रेमी हृदय भला और कहाँ समा सकते हैं ?' मालूम होने लगा, हमारे घर नहीं, द्वार नहीं, पीछे कहीं भी लौटना नहीं, इसी तरह हाथमें हाथ दिये कहीं-न-पहुंचनेके मार्गसे उद्देश्यहीन भ्रमण करते हुए चन्द्रालोकित शून्यताके ऊपरसे विना बाधाके बराबर चलते ही चलना है।

इस तरह चलते-चलते एक जगह जाकर देखा कि उस रेतीके टापूपर पास ही एक जलाशय-सा बना हुआ है। पद्मा वहाँसे कुछ हटकर बहने लगी थी, इसलिए वहाँ पानी रुक गया था।

उस मरु-बालुकासे वेष्टित निस्तरंग निश्चल सोते हुए तालाबके पानीपर चाँदनीकी लम्बी रेखा मानो बेहोश पड़ी गहरी नींद सो रही थी। वहाँ पहुंचकर हम दोनों खड़े हो गये। मनोरमा न जाने क्या सोचकर मेरे मुंहकी ओर देखने लगी। यकायक उसके माथेपरका दुशाला खिसक पड़ा। और मैंने उसका चाँदनीसे खिला हुआ प्यारा मुखड़ा उठाकर चूम लिया।

ठीक उसी समय, उस जन-मानव-शून्य निःसंग मरुभूमिमें न-जाने कौन कहाँसे तीन बार बोल उठा—"वो कौन, वो कौन, वो कौन !"

मैं एकसाथ चौंक उठा। मनोरमा भी काँप उठी। पर दूसरे ही क्षण, हम दोनों समझ गये कि यह शब्द मानुषिक नहीं,

अमानुषिक है; चर-विहारी जलचर पक्षियोंकी पुकार है। सहसा इतनी रातमें अपने एकान्त-निर्जन निवासके पास आदमी देखकर चौंक पड़े हैं।

उस डरसे चौंककर हम दोनों ही जल्दी-जल्दी बोटकी तरफ लौट पड़े। काफी रात हो चुकी थी। जाते ही मैं बिस्तरपर जा पड़ा और सो गया। शायद थक जानेसे मनोरमा भी पड़ते ही सो गई।

उसके बाद, अँधेरेमें मालूम-नहीं कौन, मेरी मशहरीके पास आ खड़ी हुई; और सोई-हुई मनोरमाकी ओर अपनी एकमात्र लम्बी पतली रक्त-मांसहीन हड्डीकी उंगलीका इशारा करके, बिलकुल मेरे पास आकर बहुत ही आहिस्तेसे पूछने लगी—"वो कौन, वो कौन, वो कौन !"

झटपट उठकर मैंने दिआसलाई जलाकर बत्ती बाली। बत्ती जलते ही वह गायब हो गई। ऐसा मालूम हुआ जैसे वह मेरी मशहरीको कँपाती और बोटको हिलाती हुई, पसीनेसे तरबर मेरे शरीरके खूनको ठंडा करके, 'हाः हाः, हाः हाः' हँसती हुई, अँधेरी रातके भीतरसे उड़ती हुई तेजीसे भाग निकली; पहले पद्मा पार हुई, फिर पद्माकी रेती पार हुई, उसके बाद सारे सोये-हुए देश ग्राम नगर मैदान पहाड़ सब पार कर गई; और अनन्तकाल तक देश-देशान्तर लोक लोकान्तर पार होकर क्रमशः क्षीण क्षीणतर क्षीणतम होती हुई असीम सुदूरकी ओर उड़ती ही चली गई। क्रमशः मानो वह जीवनमृत्युके देशको पार कर गई और उसकी आवाज क्रमशः सुईकी नोंककी तरह बारीक होती गई। इतनी

महीन आवाज मैंने पहले कभी नहीं सुनी, न उसकी कभी कल्पना ही की। मेरे माथेके भीतर मानो अनन्त आकाश भरा हुआ हो और उसकी आवाज असीम अनन्त दूर निकल जानेपर भी उससे मेरे मस्तिष्ककी सीमा छोड़ते नहीं बनता हो। अन्तमें जब बिलकुल ही असह्य हो उठा और किसी भी तरह नींद नहीं आई, तो सोचा कि बत्ती बगैर बुझाये नींद आयेगी, न चैन मिलेगा। और तब ज्यों ही बत्ती बुझाकर लेटा कि फिर मशहरीके पास कोई आ खड़ी हुई ; और पहलेकी तरह बिलकुल पास आकर धीमे स्वरसे कानमें कहने लगी—"वो कौन, वो कौन, वो कौन ?"

मेरे फेफड़ेके खूनके साथ-साथ ठीक तालपर ताल मिलाकर उसकी वही एक ही आवाज लगातार ध्वनित होने लगी—"वो कौन, वो कौन, वो कौन ! वो कौन, वो कौन, वो कौन !" उस गहरी रातमें, निस्तब्ध निशीथमें बोटके भीतर मेरी गोलाकार घड़ी भी सजीव हो उठी ; और अपना काँटा मनोरमाकी तरफ फैलाकर ताकपरसे तालपर ताल देती हुई कहने लगी—"वो कौन, वो कौन, वो कौन ! वो कौन, वो कौन, वो कौन !"

कहते-कहते दक्षिणाचरण बाबूका चेहरा पीला पड़ गया और कंठ रुँध आया। मैंने उनकी देह छूकर कहा—"जरा पानी पी लीजिये।"

इतनेमें यकायक मेरा लैम्प दुप-दुप करते-करते बुझ गया। सहसा बाहरकी ओर निगाह गई तो देखा कि सवेरा हो गया है ! कौए बोल रहे हैं, कोयल सीटी दे रही है। घरके सामनेवाली सड़क भी भैंसा-गाड़ीके पहियेकी घड़घड़ाहटसे जाग उठी है।

उजालेमें देखा तो, दक्षिणाचरण बाबूके चेहरेका भाव ही बिलकुल बदल गया है, डर या आशंकाका कोई चिह्न ही नहीं उनके चेहरेपर ! रातके मायाजालमें, काल्पनिक शंकाकी मत्ततामें उन्होंने मेरे सामने जो इतनी बातें कह डालीं, उसके लिए वे अत्यन्त लज्जित और भीतर-ही-भीतर मुझपर नाराज-से हो उठे ; और शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही चटसे उठकर चल दिये।

उसी दिन, फिर आधी रातको आकर उन्होंने मेरा दरवाजा खटखटाया—"डाक्टर ! डाक्टर !"

मणिहीन

नदीके किनारे उस टूटे-फूटे पुराने पक्के घाटके पास मेरा बोट बँधा था। और, सूरज लगभग डूब चुका था।

बोटकी खुली छतपर माझी नमाज पढ़ रहा था। अंगार-से धधकते हुए आसमानपर उसकी खामोश इबादत मानो छन-छनमें अगले जनममें सुखी होनेके लिए तरह-तरहकी तसवीरें खींचती जा रही थी। तुरत डूबे-हुए सूरजकी बची-खुची रोशनीकी बेशुमार रंग-बिरंगी छटाएँ देखते-देखते मानो फीकी लिखावटसे गहरी लिखावटमें और सुनहले रंगसे फौलादके रंगमें, एक आभासे दूसरी आभामें समाती जा रही थीं।

और मैं, घाटके पास ही उस टूटे-फूटे जंगले और लटकते हुए बरंडेवाले बूढ़े मकानके सामने, बरगदकी बेशुमार जड़ोंकी जकड़से

फटे-हुए उस घाटपर चुपचाप अकेला बैठा झींगुरोंकी झनकार सुन रहा था। मेरी सूखी आँखोंके पलक भींगना ही चाहते थे कि इतनेमें अचानक एड़ीसे लेकर चोटी तक चौंककर मैंने सुना—"आप कहाँसे आ रहे हैं साहब ?"

मुड़कर देखा तो, एक शरीफ आदमी ! बेचारा वर्षों अधपेट खा-खाकर सूखके लकड़ी बन गया है; और खुशकिस्मती तो शायद उससे नाराज होकर बड़ी लापरवाहीसे उसे डाट-फटकारकर पूरी बेइज्जती करके हमेशाके लिए उसका साथ छोड़ गई है। बंगालके ज्यादातर परदेसी नौकरोंकी जैसी एक तरहकी अरसेसे न सम्हाली गई-सी शकल-सूरत हुआ करती है, उसकी भी वैसी ही थी। देखते ही ऐसा लगता कि दफ्तरसे दिन-भरका काम पूरा करके अभी-अभी लौटा है; और जिस वक्त उसे कुछ खाना खाना चाहिए था उस वक्त अभागा नदी किनारे फकत शामकी हवा खाने आया है।

बात पूछनेके बाद वह घाटकी सीढ़ियोंपर मेरे बगल ही में बैठ गया। मैंने कहा—"राँचीसे आ रहा हूं।"

"क्या काम करते हैं ?"

"कारोबार करता हूं।"

"किस चीजका ?"

"हड़, रेशमके कोये और लकड़ीका काम है।"

"नाम पूछ सकता हूं ?"

जरा ठहरकर मैंने एक नाम बता दिया। पर वह मेरा नाम नहीं था।

उस भले-आदमीका कौतूहल दूर नहीं हुआ। उसने फिर पूछा—"यहाँ किस लिए आना हुआ?"

मैंने कहा—"आब-हवा बदलने।"

उसे कुछ ताज्जुब-सा हुआ। कहने लगा—"अजी साहब, मैं तो लगभग छै सालसे यहाँकी हवा और उसके साथ-साथ रोज पन्द्रह ग्रेन कुनैन खा रहा हूं; मगर मुझे तो जरा भी फर्क नहीं मालूम हुआ!"

मैंने कहा—"यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि राँचीकी हवा और इस हवामें काफी फर्क है!"

उन्होंने कहा—"जी हाँ, काफी!-यहाँ ठहरे कहाँ हैं?"

मैंने घाटके सामनेवाले पुराने खंडहर मकानकी तरफ इशारा करके कहा—"इसी मकानमें।"

शायद उन्हें कुछ शक-सा हुआ कि मुझे इस पुराने खंडहर मकानमें गड़े-हुए किसी तिलस्मी खजानेका पता लग गया है। पर इस विषयमें उन्होंने कोई बहस नहीं की। सिर्फ आजसे पन्द्रह साल पहले उस अभिशाप-ग्रस्त मकानमें जो वारदात हुई थी, उसीका लम्बा-चौड़ा किस्सा छेड़ दिया।

यहाँके स्कूलके मास्टर हैं वे। उनके भूख और बीमारीसे परेशान और कमजोर चेहरेपर गंजी चाँदके नीचे बड़ी-बड़ी आँखें अपने दोनों कोयोंके भीतरसे एक अस्वाभाविक चमक लिये हुए जल-सी रही हैं। सच तो यह है कि उन्हें देखते ही अंगरेज कवि कोलरिज द्वारा वर्णित पुराने जमानेके माझीकी याद आ गई।

माझी नमाज खतम करके रसोई बनानेमें लग गया। संध्याकी

अन्तिम आभा, आखिरी छटा, आसमानमें खिला गई ; और घाटके सामनेवाला सुनसान खंडहर मकान उस अंधेरेमें भूतकी तरह खामोश खड़ा रहा। मास्टर साहब कहने लगे :—

इस गाँवमें, मेरे आनेसे लगभग दस साल पहले, इस मकानमें फणिभूषण साहा रहा करते थे। उनके ताऊ दुर्गामोहनके कोई औलाद नहीं थी ; और उनका रोजगार खूब बढ़ा-चढ़ा था। धन-दौलत और जमीन-जायदाद भी काफी थी। उनके मरनेके बाद सबके मालिक हुए फणिभूषण।

मगर फणिभूषणमें एक जबरदस्त ऐब था। उनपर नये जमानेका भूत सवार हो गया। पढ़े-लिखे शिक्षित आदमी थे वे। और जूता-समेत साहबोंके दफ्तरमें घुसकर एकदम असली अंग्रेजी बोलते थे। उसपर रखा ली थी दाढ़ी। इससे अंग्रेज सौदागरोंके जरिये उनकी जो थोड़ी-बहुत तरक्की होती भी, सो भी रुक गई। देखनेमें वे आधुनिक बंगाली-से लगते थे।

यह सब तो था ही; ऊपरसे घरमें एक और आफत आ जुटी। उनकी स्त्री थी सुन्दरी। एक तो कालेजकी पढ़ी-लिखी, उसपर सुन्दरी, फिर भला पुराने जमानेको कौन पूछने लगा ? और तो और, जरा-सी तबीयत खराब हुई नहीं कि असिस्टैण्ट सर्जन बुलाया जाता था ! और, इसी तरह खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, जेवर-गहने सभी बातें जमानेके साथ-साथ बढ़ती ही चली गईं।

मैं समझता हूं, आप जरूर विवाहित होंगे; इसलिए, आपसे तो यह कहना ही फजूल है कि मामूली तौरपर औरतें कच्चे

आम, चरपरी मिर्च और कड़े पतिको पसन्द करती हैं। जो अभागा मर्द अपनी स्त्रीके प्रेमसे वंचित है वह बदसूरत या गरीब हो, सो बात नहीं; असलमें वह बिलकुल ही बेचारा, भला-मानस या भोलाभाला होता है।

अगर आप यह पूछें कि ऐसा क्यों, तो इस बारेमें मैंने बहुत-सी बातें सोच रखी हैं। जैसी जिसकी आदत और ताकत होती है उसकी चर्चा किये बगैर उससे रहा नहीं जाता, बिना उसके वह सुखी नहीं होता। हरिन अपने सींग पैनानेके लिए मजबूत पेड़का कड़ा तना ढूंढ़ता है, केलेके पेड़से सींग घिसकर उसे आराम नहीं मिलता। जबसे मर्द और औरतका भेद हुआ है तभीसे स्त्रियाँ वशमें न-आनेवाले पुरुषोंको तरह-तरहकी तरकीबोंसे फुसला कर वशमें लानेकी वशीकरण-विद्याकी चर्चा करती आ रही हैं। जो पति अपने-आप ही स्त्रीके वशमें आकर उनकी मिजाजपोशी किया करते हैं उनकी स्त्रियाँ बिलकुल बेकार हो जाती हैं; और उन्हें जो अपनी दादी-परदादियों नानी-परनानियोंसे हजारों-लाखों वर्षोंके पैनाये हुए वरुणास्त्र अग्निवाण और नागपाश आदि वशीकरणके चमकते हुए हथियार मिलते चले आ रहे हैं, वे भी सबके सब बेकार और निष्फल हो जाते हैं।

स्त्री चाहती है कि पुरुषको फुसलाकर अपनी शक्तिसे प्रेम वसूल करे। और, पति अगर भला-आदमी बनकर उतना भी उसे मौका न दे, तो समझना चाहिए कि उसकी तकदीर ही फूटी है, और स्त्रीकी तो उससे भी बढ़कर।

आज नई सभ्यताके शिक्षामन्त्रसे पुरुषने अपनी स्वभावसिद्ध

विधाताकी दी हुई महान् बर्बरता, अपनी कुदरती मरदानगी खोकर आधुनिक दाम्पत्य-सम्बन्धको इतना ढीला कर डाला है कि कुछ कहते नहीं बनता। अभागा फणिभूषण आधुनिक सभ्यता और अंग्रेजी तहजीबकी मशीनसे बहुत भला-आदमी बनकर निकला था, लिहाजा न तो वह व्यापारमें कुछ कर-धर सका, और न दाम्पत्य जीवनमें ही उतना सुखी हुआ।

फणिभूषणकी स्त्री मणिमालिकाको बिना कोशिशके प्यार, बिना आँसू बरसाये ढाका और बनारसकी साड़ी, बगैर रूठे और जबरदस्त अभिमान किये बाजूबंद मिल जाया करते थे। इस तरह उसकी नारी-प्रकृति और साथ ही उसका प्रेम निठल्ला बेकार हो गया था। वह सिर्फ लेती ही थी, देती कुछ न थी। उसका भोलाभाला और निर्बोध स्वामी समझता था कि दान ही शायद प्रतिदान पानेका उपाय है, देते जाना ही शायद पानेका एकमात्र तरीका है। बिलकुल ही उलटा समझ रखा था बेचारेने!

इसका नतीजा यह हुआ कि पतिको वह अपने लिए ढाकेकी साड़ी और बाजूबंद देनेवाली मशीन-सी समझती थी; और मशीन भी ऐसी अच्छी कि कभी किसी दिन उसके पहियेमें एक बूँद तेल तक देनेकी जरूरत नहीं।

फणिभूषणका घर था फूलबेड़िया; और कारोबार करता था यहाँ। काम-काजके लिए ज्यादातर उसे यहीं रहना पड़ता था। घरमें उसकी मा नहीं थी; फिर भी बुआ मौसी आदि और पाँच जनी तो थीं ही। पर फणिभूषण बुआ और मौसी वगैरहके उपकारके लिए ही खास तौरसे सुन्दरी स्त्रीको ब्याहकर घर लाया

हो, सो बात नहीं। इसलिए उसने अपनी स्त्रीको उन पाँच जनियोंके पाससे यहाँ लाकर इसी मकानमें अपने पास ही रखा। लेकिन, और-और अधिकारोंसे स्त्री-अधिकारमें भेद यह है कि स्त्रीको पाँच-जनियोंके पाससे अलग करके अकेले अपने पास रखनेसे ही हर हालतमें उसके मनपर ज्यादा कब्जा हो ही जायगा ऐसा कोई नियम नहीं।

स्त्री उसकी ज्यादा बोलती न थी; और अड़ोस-पड़ोसकी स्त्रियोंके साथ भी वह बहुत कम मिलती-जुलती थी। कभी किसी व्रत-उपवासके मौकेपर ब्राह्मणोंको खिलाना-पिलाना या वैष्णवी भिखारिनोंको दो पैसे देना, यह उससे कभी न हुआ। उसके हाथसे कोई चीज बरबाद नहीं हुई। सिर्फ एक पतिके प्यारको छोड़कर और जो भी कुछ उसे मिला, सबको वह बड़े जतनसे सहेज-सहेजकर रखती गई। और सबसे बढ़कर ताज्जुब तो इस बातका है कि उसने अपने यौवन और रूप-लावण्यमेंसे भी रंचमात्र फिजूलखर्ची नहीं होने दी!

लोग कहते हैं कि चौबीस वर्षकी उमरमें भी वह चौदह वर्षकी-सी कच्ची-कोमल दीखती थी। जिनका दिल सिर्फ एक बरफका टुकड़ा है, जिनके हृदयमें प्रेमकी जलन-तड़पनके लिए बिलकुल जगह ही नहीं, वे शायद बहुत दिनों तक ताजे बने रहते हैं; क्योंकि शायद वे कंजूसकी तरह भीतर और बाहरसे अपनेको सहेज-सहेजकर रख सकते हैं।

खूब जोरोंसे पनपनेवाली हरी-भरी पत्तियोंसे लदी लताकी तरह विधाताने मणिमालिकाको निष्फल बनाये रखा; उसे सन्तान नहीं

दी। यानी, उसे ऐसी कोई चीज नहीं दी जिसे वह अपने लोहेके सन्दूकमें रखे हुए माणिक-मोती और हीरा-जवाहरातसे भी बढ़कर अपने प्राणोंसे भी प्यारी समझ सकती, जो वसन्तऋतुके उगते-हुए नये सूरजकी तरह अपनी मुलायम गरमीसे उसके बरफ-से ठंडे और पत्थर हृदयको गलाकर उसकी घर-गृहस्थीपर एक स्नेह और प्यारकी धारा बहा देती।

मणिमालिका काम-काजमें खूब मजबूत थी। कभी भी उसने नौकर-चाकर ज्यादा नहीं रखे। जिस कामको वह खुद कर सकती है उसके लिए कोई दूसरा तनखा ले जाय, यह उसे बरदाश्त नहीं था। वह किसीके लिए सोचती नहीं थी, न किसीसे प्यार करती थी; सिर्फ काम करती थी और चीजें जोड़ा करती थी। इसीलिए उसे रोग शोक चिन्ता-फिकर कुछ भी नहीं था। हद दरजेकी तन्दुरुस्ती, अविचलित शान्ति और बेहद इकट्ठी की हुई सम्पदामें वह अपने बूतेपर आप तिरती रहती थी।

अधिकांश पतियोंके लिए इतना ही काफी है; काफी क्यों, दुर्लभ है। शरीरमें 'कमर' नामकी एक जगह है, कमरमें दर्द हुए बगैर उसकी याद नहीं आती। और घरमें सुख-दुःख, हँसी-खेल सब बातोंमें आराम और तसल्ली देनेवाली 'स्त्री' नामकी जो एक चीज है, प्रेमकी ताड़नासे कदम-कदमपर और चौबीसों घंटे उसे महसूस करनेका नाम 'घर-गृहस्थीकी कमरमें दर्द' है। हदसे ज्यादा पतिभक्ति और पातिव्रत्य स्त्रीके लिए गौरवका विषय हो सकता है, पर पतिके लिए वह आरामकी चीज नहीं। मेरी तो यह पक्की राय है।

भला आप ही बताइये, अपनी स्त्रीका प्रेम ठीक कितना मिला, वजनमें ठीक कितना कम पड़ा, बहुत ही बारीकीसे दिन-रात काँटेपर उसे तौलते फिरना क्या मरदोंका काम है ? स्त्री अपना काम करे, हम अपना काम करें; घर-गृहस्थीका मामूली हिसाब तो यही है। अव्यक्तमें कितना व्यक्त है, जाहिरमें कितना छुपा हुआ है, भावमें कितना अभाव है, स्पष्टमें कितना इशारा है, अणु परिमाणुमें कितनी विशालता है, बारीकीमें कितना फैलाव है, प्यार-मुहब्बतके बारेमें इतनी बारीक समझ खुद विधाताने आदमी को नहीं दी, देनेकी कोई जरूरत ही नहीं समझी। पर हाँ, इतना मैं जरूर कहूंगा कि मरदोंकी जरा-जरा सी बातपर, उनके रंचमात्र प्यार और लहमे-भरकी नाराजगीको लेकर औरतें उसे जरूर तौलने नापने बैठ जाती हैं। अपने आदमीकी कही हुई बातमेंसे असल मतलबको और असल मतलबमेंसे ठीक बातको वे बालकी खालकी तरह चीर-चीरकर चुन-चुनके निकाला करती हैं। उसकी वजह यह कि मरदोंका प्यार ही औरतोंका बल-बूता है, उनकी जिन्दगीका कारोबार ही उसी पूँजीसे चलता है। लिहाजा उसकी हवा देखकर वे ठीक वक्तपर ठीक तरहसे पाल घुमाती रहें तो उनकी नाव पार लग जाती है। इसीलिए विधाताने प्रेम तौलनेकी तराजू स्त्रियोंके हृदयमें लटका दी है, पुरुषोंको नहीं दी।

मगर अब तो, विधाताने जो चीज नहीं दी, आजकलके पुरुषोंने उसे भी ढूँढ़ निकाला है। कवियोंने विधाताको ठेंगा दिखाकर मुश्किलसे मिलनेवाली वह तराजू, जरा-सी हवा लगते ही इधर-उधर झुक जानेवाला काँटा, बगैर कुछ सोचे-विचारे

आम लोगोंके हाथमें सौंप दिया है। विधाताको मैं दोष नहीं देता, उन्होंने स्त्रियोंको काफी भिन्न रूपमें तैयार किया है; मगर आजकलकी सभ्यतासे तो अब वह भेद भी मिटा चाहता है; अब तो स्त्रियाँ भी पुरुष हो रही हैं और पुरुष भी स्त्री हो रहे हैं। इसलिए घरमेंसे शान्ति और सुख तो अब जाता ही रहा समझिये। अब तो शुभ-विवाहसे पहले, पुरुष स्त्रीको ब्याह रहा है या स्त्री पुरुषको, यह बात किसी भी तरह तय न होनेसे वर और कन्या दोनों ही का मन डरसे धुकुर-पुकुर करता रहता है।

आप कुछ नाखुश मालूम होते हैं। असलमें बात यह है कि मैं यहाँ अकेला पड़ा रहता हूं। अपनी स्त्रीकी तरफसे मैं यहाँ देश-निकालेकी सजा भोग रहा हूं। फिर भी, इतनी दूरसे न-जाने क्यों घर-गृहस्थीके बारेमें अनेक गूढ़ भाव मेरे मनमें उठते रहते हैं। और इतना तो आप मानेंगे ही कि विद्यार्थियोंके सामने कहने लायक यह विषय नहीं है; इसीसे आज आपका साथ पाकर आप ही से सारी बातें कहे लेता हूं। अभी न सही, फुरसतमें आप विचारकर देखियेगा।

कहनेका मतलब यह कि अगरचे फणिभूषणकी दालमें नमक कम न होता था और न पानमें चूना ही कभी ज्यादा पड़ा, फिर भी, उसके दिलको बहुत ही बेचैन करनेवाली क्या-जाने क्या नामकी एक बीमारी उसे सताती ही रहती। स्त्रीका कोई दोष नहीं, कोई गलती नहीं; फिर भी उसकी तरफसे फणिको कोई सुख नहीं था, जरा भी आराम नहीं था। वह अपनी सहधर्मिणीके रीते, पर ठोस, हृदयको लक्ष्य करके बराबर हीरा पन्ना

माणिक मोतीके गहनोंके तीर छोड़ता रहता, पर वे लक्ष्यभ्रष्ट होकर जा पड़ते लोहेके सन्दूकमें, हृदय रीतका रीता ही रह जाता, ठोसका ठोस ही बना रहता। उसके चाचा दुर्गामोहन न तो प्रेमको इतनी बारीकीसे समझते ही थे, न जवानीमें कभी उन्होंने मजनूकी निगाहोंसे किसीको देखा ही था जो भतीजेके दिलपर बीतनेवाली मुसीबतोंका अन्दाजा लगा सकें। और इसीलिए अपने भतीजेको वे ऐसा ज्यादा-कुछ देते भी नहीं थे। मगर चाची उसे खूब देती थी। जिसे कारोबारी बनना है, नई रोशनीका बाबू बननेसे उसका काम नहीं चल सकता। और, जिसे पति बनना है उसके लिए मर्द बनना बहुत ही जरूरी है। इसमें आप जरा भी शक न करें।

ठीक इसी समय, पासके जंगलमें खूब ऊँचे स्वरसे गीदड़ बोल उठे। इससे मास्टर साहबके किस्सेमें कुछ मिनटोंके लिए रुकावट पड़ गई। तब ऐसा मालूम होने लगा जैसे उस अन्धकारमय सभा-भूमिमें कौतुकप्रिय शृगाल-सम्प्रदाय या तो स्कूल-मास्टरकी कही हुई दाम्पत्य-नीति सुनकर या नई सभ्यताके चंगुलमें फँसे बेचारे कमजोर फणिभूषणके आचरणपर रह-रहकर अट्टहास्य करने लगा। उनका आवेश खतम होते ही जल और स्थल पहलेसे दूना निस्तब्ध हो गया। और तब, मास्टर साहबने संध्याके उस अन्धकारमें अपनी बड़ी-बड़ी चमकती हुई आँखोंसे मेरी तरफ घूरकर देखा; और फिर किस्सा कहना शुरू कर दिया :—

फणिभूषणके जटिल और दूर तक फैले हुए करोबारमें अचानक

एक अलप-सी आ खड़ी हुई। दर-असल क्या बात थी, सो मुझ सरीखे अव्यवसायीके लिए समझना और समझाना मुश्किल है। पर, इतना मैं जरूर कह सकता हूं कि अचानक न-जाने क्यों, बाजारमें अपनी क्रेडिट कायम रखना उसके लिए मुश्किल हो गया। अगर, सिर्फ पाँच ही रोजके लिए कहींसे उसे लाख डेढ़ लाख रुपया मिल जाता और बाजारमें बिजलीकी तरह उन रुपयों की चमक वह लोगोंको दिखा सकता, तो बस, इतनेसे ही उसके कारबारके सारे संकट दूर हो जाते; और फिर व्यापारकी नाव और भी तेजीसे दौड़ने लगती।

रुपयोंका कुछ जुगाड़ नहीं बैठ रहा था। बाजारमें ऐसी अफवाह फैल जानेपर कि गाँव और आसपासके परिचित महाजनोंसे कर्ज लिया जा रहा है, कारबारका दूना बिगाड़ होगा, इस डरसे उसे अनजान जगहसे कर्ज लानेकी कोशिश करनी पड़ी। लेकिन, आप जानते ही हैं, वहाँ जेबर या मिलकियत गिरवी रखे बगैर रुपये कैसे मिल सकते थे?

जेबर रखनेसे लिखा-पढ़ीका कोई बखेड़ा नहीं, और न देरीका डर; झटपट और आसानीसे काम हो सकता है।

और-कोई उपाय न देख, पसोपेशमें पड़ा हुआ फणि एक बार अपनी स्त्रीके पास गया। अपनी स्त्रीके पास पति जितनी आसानी और आजादीके साथ जा सकता है, फणिमें उतनी ताकत भी नहीं थी। और मजा यह कि बदकिस्मतीसे वह अपनी स्त्रीको बहुत ज्यादा चाहता था, हदसे ज्यादा प्यार करता था; और वह भी कैसा, जैसा काव्यका नायक काव्यकी नायिकासे करता है; जिस

प्यारमें सम्हल-सम्हलकर पैर रखना पड़ता है और सब बात मुँह खोलकर कहते नहीं बनती, जिस प्रेमका जबरदस्त खिंचाव सूरज और जमीनके खिंचावकी तरह बीचमें एक बहुत बड़ी दूरी, बहुत ज्यादा फासला रख देता है !

फिर भी, टेढ़ा-सीधा कोई मामला आ पड़ता है तो काव्यके नायकको भी अपनी प्रेयसीके पास जाकर हुंडी तमस्सुक और हाथचिट्ठेका जिक्र छेड़ना ही पड़ता है ; फिर भले ही उसमें कंठ रुक आये और बात अधूरी ही रह जाये। और, सबसे बढ़कर रोना तो इस बातका है कि इस नये जमानेके प्रेममें, ऐसी-ऐसी बहुत जरूरी कामकी बातोंमें भी भावोंकी जड़ता उनका पीछा नहीं छोड़ती, उनके दिलमें अरमानोंका दर्द और उस दर्दमें वेदनाकी कँपकँपी उठती ही रहती है। अभागा फणिभूषण मुँह खोलकर साफ-साफ कह ही न सका कि 'सुनती हो, मुझे एक जरूरी काम आ पड़ा है, कुछ दिनके लिए अपने जेवर निकाल दो !'

बात तो यही कही, पर बहुत ही कमजोरीके साथ। इसपर मणिमालिकाने जब कठोर मुँह बना लिया और 'हाँ' 'ना' कुछ भी जवाब नहीं दिया, तो उसे बड़ा गहरा सदमा पहुंचा। इतनी बड़ी गहरी चोट उसने खुद सह ली, पर अपनी प्रेयसीको नहीं पहुंचाई। इसकी वजह क्या, यही न कि मरदों जैसी मरदानगी उसमें नामको भी नहीं थी ! जहाँ उसे जबरदस्ती छीन लेना चाहिए था, वहाँ वह अपने अन्दरूनी सदमे तकको पी गया ! अभागा अब तक इसी उधेड़-बुनमें वक्त खो रहा था कि 'जहाँ सिर्फ एक प्यारका ही पूरा हक है, वहाँ, सत्यानास हो जानेपर

भी ताकतको हरगिज न घुसने देगा।' इस विषयमें अगर उसे डाटा-फटकारा भी जाता, तो शायद वह ऐसी बारीक बहस छेड़ देता कि 'बाजारमें अगर किसी वजहसे मेरी क्रेडिट बिगड़ रही है तो जैसे मुझे कोई हक़ नहीं कि मैं बाजारको लूट लूँ, वैसे ही स्त्री अगर अपनी इच्छासे मुझपर विश्वास करके जेवर नहीं देना चाहती तो मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं उसका जेवर जबरदस्ती छीन लूँ। बाहुबल या जिस्मी ताकत लड़ाईके मैदानमें ही दिखाना चाहिए।' मैं पूछता हूं, जिन्दगीके हर कदमपर बहस या ऊहापोहकी कैंचीसे ऐसे बारीक-बारीक सूत काटनेके लिए ही क्या विधाताने मरदोंको इतना उदार, इतना ताकतवर और इतना महान बनाया है? उसे क्या बैठे-ठाले ऐसी-ऐसी सुकुमार मुलायम चित्तवृत्तियोंको बहुत ही बारीकीके साथ सोचने-गढ़नेकी फुरसत है, या ऐसा करना उसे शोभा देता है?

कुछ भी हो, आखिर अपनी उन्नत हृदयवृत्तिके गर्वमें स्त्रीका जेवर न छूकर फणिभूषण किसी दूसरे तरीकेसे रुपयोंका इन्तजाम करने कलकत्ता चल दिया।

संसारमें मामूली तौरपर स्त्रीको पति जितना पहचानता है, शायद पतिको स्त्री उससे कहीं ज्यादा पहचानती है। पर पतिकी प्रकृति अगर बहुत ही सूक्ष्म हो, तो स्त्रीकी दूरबीनमें वह सबकी सब दिखाई नहीं देती। फणिभूषणकी स्त्री ये सब बातें अच्छी तरह समझती नहीं थी। और स्त्रियोंका महाकविके शब्दोंमें 'अशिक्षित-पटुत्व' और मेरे लफ्जोंमें 'गँवारू होशियारी' बहुत पुराने जमानेसे चले-आये जिन पुराने संस्कारोंसे बनी है,

आजकलके प्रेमी नौजवान उससे बहुत दूर चले जाते हैं। आजकलके ये मर्द कुछ और-ही तरहके हैं ! ये स्त्रियोंकी तरह रहस्यमय होते जा रहे हैं। आम तौरपर साधरण पुरुषके जो कई-एक खास-खास दरजे हैं; यानी कोई बर्बर है तो कोई भोंदू, कोई अन्धा है तो कोई कुछ, इनमेंसे किसी भी खानेमें उन्हें ठीक तौरसे नहीं रखा जा सकता।

मणिमालिकाने सलाह लेनेके लिए अपने खास सलाहकारको बुलवाया। गाँवके रिश्तेमें या दूरके नातेमें मणिमालिकाका एक भाई फणिभूषणके दफ्तरमें गुमाश्तेके नीचे काम करता था। उसमें ऐसी लियाकत नहीं थी कि काम दिखाकर अपनी कुछ तरक्की करा सके; अलबत्ता कोई मौका पाते ही रिश्तेदारीके बूतेपर वह तनखा या तनखासे भी ज्यादा कुछ-न-कुछ वसूल कर लिया करता था।

मणिमालिकाने उसे बुलाकर सब बातें कहीं; और अन्तमें उससे पूछा—"अब तुम क्या सलाह देते हो ?"

उसने अत्यन्त बुद्धिमानकी तरह सिर हिलाया, समझदारोंके लिए जिसका मतलब यह है कि 'लच्छन तो अच्छे नहीं दिखाई देते !' बुद्धिमान लोग कभी भी लच्छन अच्छे नहीं देखते। खूब सोच-विचारकर वह बोला—"बाबू सा'ब तो रुपया कहींसे ला ही नहीं सकते, आखिर तुम्हारे ही गहनोंपर नम्बर आयेगा !"

मणिमालिकाको आदमीकी जहाँ तक पहचान थी, उससे उसने समझ लिया कि 'बात तो ठीक है !' और फिर, उसकी दुश्चिन्ता बढ़ती ही गई। सोचने लगी, इस घरमें उसका है ही कौन ? औलाद उसके नहीं; और पति हैं तो, पर उनकी

मौजूदगीको वह महसूस कहाँ करती है ? लिहाजा, जो उसकी इकलौती प्यारकी चीज है, जो उसकी सन्तानकी तरह धीरे-धीरे सालों-साल बढ़ती ही जा रही है, जो सिर्फ रूपक ही नहीं बल्कि वास्तवमें सोना है, माणिक-मोती है ; जो उसकी छातीका है, गलेका है, माथेका है, बहुत दिनोंकी और बड़े साधकी वे सब चीजें, एक ही क्षणमें वह उन्हें कारोबारके अथाह समुद्रमें कैसे फेंक दे ? इसकी कल्पना करते ही उसका सारा शरीर बरफ-सा ठंडा हो आया। उसने कहा—"अब किया क्या जाय ?"

मधुसूदनने कहा—"सब गहने लेकर अभीसे मायके पहुंच जाओ।" और साथ ही जेबरमेंसे कुछ हिस्सा, बल्कि अधिकांश, किस तरह उसके पल्ले पड़ेगा, मन-ही-मन मधुने उसकी तरकीब भी सोच ली।

मणिमालिका उसकी बातपर उसी वक्त राजी हो गई।

असाढ़के अन्तमें, ठीक इसी समय, इसी घाटपर एक नाव आकर लगी। आखिरी रातमें बादलोंसे घिरे हुए घोर अन्धकारमें निद्राहीन मेढ़कोंके कलरवमें एक मोटी चादरसे सिरसे लेकर पैर तक ढकी हुई मणिमालिका नावपर आ बैठी।

मधुसूदन नावके भीतरसे जागकर बोल उठा—"गहनेकी पेटी मुझे दो।"

मणिने कहा—"सो पीछे होगा, पहले नाव खोल दो।"

नाव खोल दी। नदीकी तेज धारामें नाव सन्नाती हुई चल दी।

उस दिन मणिमालिका रात-भर अपने कमरेमें बैठी-बैठी एक-एक करके अपने सारे गहने पहनती रही। सिरसे लेकर

पैर तक कहीं भी तिल रखनेको जगह नहीं बची। पेटीमें जेवर रखनेसे पेटी इधर-उधर हो सकती है यह डर उसके पेटमें पहले ही से बैठा हुआ था। उसकी धारणा थी कि देहमें पहन लेनेसे बिना उसे जानसे मारे कोई भी उसके गहने छीन नहीं सकता।

साथमें कोई पेटी या सन्दूक न देखकर मधुसूदनकी कुछ समझमें न आया। यह बात उसके ध्यानमें ही नहीं आई कि मोटी चादरके भीतर मणिमालिका अपने प्राणोंसे भी प्यारे गहनोंसे लदी हुई है। पर, मणिमालिका फणिभूषणको भले ही न पहचानती हो, लेकिन मधुसूदनको पहचाननेमें उसने कतई गलती नहीं की।

मधुसूदन गुमाश्तेको एक चिट्ठी लिखकर दे गया। उसमें लिखा था कि वह मालिकिनको मायके पहुंचाने जा रहा है। गुमाश्ता फणिभूषणके पिताके जमानेका था। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने अपनी तरफसे काफी नमक-मिर्च मिलाकर, ह्रस्व इकारको दीर्घ ईकार और दन्ती 'स'को तालबी 'श' बनाकर मालिकको एक चिट्ठी लिख दी। उसकी भाषा अच्छी नहीं थी; पर स्त्रीको ज्यादा सिर चढ़ाना मर्दोंकी शानके खिलाफ है, यह बात उसने उसमें ठीक तौरसे जाहिर कर दी।

फणिभूषण मणिमालिकाके मनकी बात ठीक समझ गया। उसके दिलपर सबसे गहरी चोट इस बातकी लगी कि 'मैंने बड़ा-भारी नुकसान उठाते हुए भी स्त्रीके जेवरमें हाथ नहीं लगाया और रुपयोंके लिए अब तक दर-दर भटकता फिर रहा हूं, फिर भी मुझे सन्देह! मणिने मुझे अब भी नहीं पहचाना!'

अपने प्रति जिस कठोर अन्यायपर फणिभूषणको बहुत ज्यादा नाराज होना चाहिए था, उसपर वह सिर्फ जरा दुःखित होकर रह गया ! सही तरीकेसे विचारकर देखा जाय तो कोई भी समझदार इसी नतीजेपर पहुंचेगा कि पुरुष विधाताका न्यायदण्ड है, उसे उन्होंने फौलादसे बनाया है और साथ ही उसमें बिजली भी भर दी है। अपने लिए या दूसरोंके लिए अन्यायका संघर्ष होते ही अगर वह तड़ककर भकसे जल न उठा, तो धिक्कार है उस पुरुषको ! पुरुषोंको जरा-सा कारण मिलते ही दावाग्निकी तरह क्रोध आ जाना चाहिए; और स्त्रियोंको सावनके बादलोंकी तरह बिना-कारण आँसू बरसाते रहना चाहिए। विधाताने तो ऐसी ही व्यवस्था की थी; पर अब उसकी चलती कहाँ है ?

फणिभूषणने अपनी अपराधिनी स्त्रीके लिए मन-ही-मन कहा, 'अगर तुम यही चाहती हो तो ऐसा ही सही, मैं तो अपना फर्ज अदा करता ही रहूंगा।'

बताइये भला, जिस फणिभूषणको और-भी पाँच-सात सदी बाद पैदा होना चाहिए था, जब कि सिर्फ आध्यात्म-शक्तिके बलपर दुनिया चलने लगती, भला वह भावी युगका फणिभूषण उन्नीसवीं सदीमें पैदा होकर आदियुगकी स्त्रीके साथ ब्याह करने बैठा, शास्त्रोंमें जिसकी बुद्धिको प्रलयङ्करी कहा गया है ! फणिभूषणने स्त्रीके लिए चिट्ठी देना तो दूर रहा, एक हरूफ भी नहीं लिखा ; बल्कि मन-ही-मन वह प्रतिज्ञा करके बैठ गया कि इस विषयमें मणिसे वह कभी भी कोई बात न पूछेगा। बताइये भला, विधाताका यह कैसा भीषण दण्ड-विधान है !

आठ-दस दिनके बाद, बड़ी मुश्किलसे रुपयोंका इन्तजाम करके किसी कदर खतरेसे छुटकारा पाकर फणिभूषण घर लौटा। उसने सोचा था कि मायकेमें जेवर-गहना रखकर मणि अब तक घर लौट आई होगी। आखिर, वह यह सोचता हुआ कि उस दिनके दीन प्रार्थी-भावको छोड़कर पूरी कामयाबीके बाद आज एक कृती पुरुषके रूपमें मैं मणिसे मिलने जा रहा हूं, इससे कहीं वह शरमिन्दा न हो और अपनी फिजूलकी होशियारीके लिए पछता-पछताकर कहीं मुरझा न पड़े, फणि अपनी मणिकी तलाशमें धीरे-धीरे जनानखानेमें पहुंचा; और मणिके खास-कमरेके दरवाजे के आगे जाकर खड़ा हो गया।

देखा तो, दरवाजा बन्द है! ताला तोड़कर घरमें घुसकर देखा, घर सूना है। एक कोनेमें लोहेका सन्दूक खुला पड़ा है, उसमें जेवर-गहनोंका नामो-निशान तक नहीं। यकायक फणिके कलेजेमें तीर-सा आ चुभा। उसे ऐसा लगा कि जैसे संसार उद्देश्यहीन है, उसके कोई मानी नहीं, प्रेम और वाणिज्य-व्यवसाय सब-कुछ व्यर्थ है, फजूल है! 'उफ, मैं इसी दुनियादारीके पिंजड़ेकी हर सींकपर जान न्योछावर करने बैठा हूं, और उसके भीतर चिड़िया है ही नहीं! और रखो भी, तो रहती नहीं। फिर क्यों, दिन-रात हृदयके खूनसे बने माणिक और आँसुओंसे बने मोतियों की मालासे मैं क्या और किसे सजाने बैठा हूं! चिर-जीवनके उस सर्वस्व-पोषित सूने संसार-पिंजरको, जिन्दगी-भरकी अपनी सारी कमाई और मुहब्बत-प्यार-प्रेमसे बनाये हुए अपनी दुनियाके उस रीते पिंजड़ेको फणिभूषणने मन-ही-मन लात मारकर दूर फेंक दिया।

अपनी स्त्रीके बारेसे फिर उसने कोई कोशिश नहीं की ; कभी उसका जिक्र तक नहीं होने दिया ; इसलिए कि इससे उसकी प्रेयसीकी आबरू घटेगी। उसने सोच लिया कि 'जब उसकी इच्छा होगी, आ जायगी। हम दोनोंका दरजा एक है। अपनी खुशीसे गई है, अपनी तबीयतसे आ जायगी।'

बूढ़े ब्राह्मण गुमाश्तेने आकर एक दिन कहा—"चुप होकर बैठे रहनेसे क्या होगा बाबू सा'ब? बहूजीकी खबर तो लेनी ही चाहिए?"

इसके बाद उन्होंने खुद बहूके मायके आदमी भेज दिया। वहाँसे खबर आई कि मणि या मधु कोई भी आज तक वहाँ नहीं पहुंचा!

तब चारों तरफ ढुंढेरा पड़ गया। नदीके किनारे-किनारे पूछते और तालाश करते हुए आदमी दौड़े। मधुकी तालाशीके लिए थानेमें खबर दी गई। पर, किस नावपर, किस रास्तेसे, कहाँ गये, कौन माझी था—कुछ भी पता न लगा।

सब तरहसे हताश होकर, एक दिन शामके वक्त फणिभूषण अपने उस छोड़े-हुए खास-कमरेमें घुसा। उस दिन जन्माष्टमी थी। सवेरेसे लगातार मूसलधार वर्षा हो रही थी। गाँवके बाहर एक जगह जन्माष्टमीका मेला लगता है। वहाँ बड़े-भारी शामियानेके नीचे 'रासलीला' हो रही थी। और तब, मूसलधार बरसनेवाले पानीकी लगातार आवाजने जमीन-आसमानमें ऐसी एक गूंज पैदा कर दी थी कि उसमें 'रासलीला'के गीतोंका सुर और-भी ज्यादा मीठा होकर कानोंके रास्ते हृदय तक पहुंच रहा

था ; और उसने फणिभूषणको इस दुनियासे उठाकर सपनोंकी दुनियामें पहुंचा दिया था।

यह सामने जो खिड़की दीख रही है, जिसके कुलाबे ढीले पड़ गये हैं, फणिभूषण इसी खिड़कीके पास अँधेरेमें बैठा था। बरसाती हवा, मेहकी बौछार और 'रासलीला' का संगीत बड़ी आसानीसे घरमें घुस रहा था। पर फणिको इसकी कुछ खबर ही न थी। घरकी दीवारपर लक्ष्मी और सरस्वतीकी तसवीरें टँगी थीं। अलगनीपर अँगौछा और तौलिया, एक चूड़ी-पाड़की साड़ी और एक डोरियाकी साड़ी हाल-ही-इस्तेमालमें आने-लायक तरीकेसे चुनी-चुनाई लटक रही थी। एक कोनेमें तिपाईपर पीतलके पानदानमें मणिमालिकाके अपने हाथके लगे-हुए पान पड़े-पड़े सूख रहे हैं। काँचकी आलमारीमें उसके बचपनसे इकट्ठे किये हुए चीनीमट्टीके खिलौने, एसेन्सकी शीशियाँ, रंगीन काँचके डिकैन्टर, बढ़िया ताश, समुद्रकी बड़ी-बड़ी कौड़ियाँ, और तो क्या, साबुनके रीते बकस तक बड़ी खूबसूरतीके साथ तरतीबवार रखे हुए हैं। अपने जिस छोटे-से शौकके लैम्पको वह खुद अपने हाथसे रोज जलाकर आलेमें रख दिया करती थी वह भी जहाँका तहाँ अपने आप बुझकर अपनी मालिकिनकी यादमें मुरझाया हुआ खड़ा है। सिर्फ यह एक छोटा-सा लैम्प ही उस घरमें मणिमाला की मौजूदगीकी आखिरी घड़ियोंका गवाह था, जो कुछ बोल न सकता था। हाय हाय, सब कुछ सूना करके जो चला जाता है, वह भी अपनी इतनी निशानी, इतना इतिहास, सारी जड़-वस्तुओंपर अपने सजीव हृदयके स्नेहके इतने हस्ताक्षर रख

जाता है ! इन बातोंका खयाल आते ही फणिभूषण और भी ज्यादा विह्वल हो उठा।

'आओ मणिमाला, आओ ! तुम अपना दीप खुद आकर जलाओ, तुम अपने घरमें स्वयं आकर उजाला करो। आओ, आईनेके सामने खड़ी होकर एक बार बड़े चावसे चुनी-हुई अपनी साड़ी आकर पहनो। तुम्हारी तमाम छोड़ी-हुई चीजें तुम्हारे लिए इन्तजार कर रही हैं। आओ ! तुमसे कोई कुछ चाहेगा नहीं, कोई कुछ माँगेगा नहीं, सिर्फ तुम यहाँ आकर, बस एक बार, अपनी सूरत दिखाकर अपने अक्षय यौवन और अपने अम्लान सौन्दर्यसे चारों तरफकी बिखरी हुई इन अनाथ जड़-वस्तुओंको अपने प्राणोंका स्पर्श देकर संजीवित कर दो। आओ ! इन सब मूक प्राणहीन वस्तुओंके अव्यक्त क्रन्दनने घरको आज श्मशान बना रखा है, आओ !'– सोचते-सोचते फणि किसी और ही दुनियामें पहुंच गया।

गहरी रातको कब किस समय वर्षाकी धारा और रासलीलाका गीत थम गया, कुछ पता नहीं। फणिभूषण खिड़कीके पास जैसे बैठा था वैसे ही बैठा रहा। खिड़कीके बाहर जमीनसे लेकर आसमान तक ऐसा एक अखण्ड घोर अन्धकार छाया हुआ था कि उसे देखकर फणिको मालूम हुआ, मानो उसके सामने यमालयका आकाशसे भी ऊँचा सिंहद्वार खुला पड़ा है; मानो यहाँ खड़े होकर रोनेसे हमेशाकी खोई चीज थोड़ी देरके लिए एक बार दिखाई दे तो दे भी सकती है। स्याहीसे भी स्याह मौतके इस दरवाजेपर, इस कड़ीसे कड़ी काली कसौटीपर उस खोये

हुए सोनेका एक निशान पड़े तो पड़ भी सकता है।

इतनेमें एक ठकठक आवाजके साथ-साथ गहनेका छमछम शब्द सुनाई दिया। ठीक ऐसा मालूम होने लगा जैसे आवाज नदीके घाटसे मकानकी ओर बढ़ी चली आ रही हो। उस वक्त नदीका पानी और रातका अँधेरा दोनों एक हो रहे थे। फणिके रोंगटे खड़े हो गये, उसकी दोनों उत्सुक आँखें अँधेरेको ढकेल-ढकेलकर, अपनी तेज निगाहोंसे उसे छेद्-छेदकर न-जाने किसे देखनेके लिए व्याकुल हो उठीं। वह फूला न समाया। पर हाय, दूसरे ही क्षण उसका पुलकित हृदय मुरझा-सा गया और उत्सुकतासे अधीर दृष्टि व्यथित हो उठी ; सामने उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। किसीको देखनेकी कोशिश उसकी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी त्यों-त्यों अन्धकार और-भी घना होने लगा और दुनिया मानो छाया-सी दीखने लगी। प्रकृतिने शायद निशीथरात्रिमें अपने मृत्यु-निकेतनकी खिड़कीके सामने अचानक अतिथिका समागम देखकर, कुदरतने ऐसी सुनसान गहरी रातमें, ऐसे गहरे-काले अँधेरेमें मौतके खास-महलके झरोखेके पास अचानक किसी पाहुनेको आते देख, जल्दीसे हाथ बढ़ाकर मानो और-भी एक मोटा काला परदा डाल दिया।

आवाज आहिस्ता-आहिस्ता घाटके सबसे ऊँची सीढ़ी तय करके मकानकी ओर बढ़ती ही चली आई ; और आते-आते ठीक मकानके सामने आकर थम गई। ड्योढ़ीका दरवान फाटक बन्द करके मेलेकी सैर करने गया था। उसके बाद, फिर ऐसा मालूम हुआ, मानो बन्द फाटकपर ठकठक खटखट आवाज हो रही है ;

और गहनोंके साथ-साथ कोई कड़ी और ठोस चीज बार-बार दरवाजेपर आ-आकर टकरा रही है। फिर तो फणिभूषणसे न रहा गया। दीआ-बुझे-हुए अँधेरे कमरोंको पार करके वह अँधेरी सीढ़ियोंसे उतरकर बन्द फाटकके पास जा पहुंचा। देखा तो उसका ताला बन्द है। फणिभूषणने दोनों हाथोंसे ज्यों ही उसे झकझोरा, त्यों ही उसके धक्के और आवाजसे वह चौंककर जाग गया। देखा कि सोतेसे उठकर वह ऊपरसे नीचे उतर आया है। उसकी सारी देह पसीनेसे तर, हाथ-पैर बर्फ-से ठंडे और हृदय बुझते हुए दीएकी तरह काँप रहा है। सपना जब टूट गया, तो देखा कि बाहर किसी तरहकी आवाज नहीं है, सिर्फ सावनकी वर्षाधारा अब भी झरझर आवाज करती हुई झर रही है; और उसीके साथ मिलकर सुनाई दे रही है 'रासलीला' में होनेवाले गीतकी भोरही तान।

यद्यपि सब-कुछ सपना ही था, पर इतना ज्यादा नजदीक और इतना सच्चा कि फणिभूषणको मालूम हुआ मानो जरासेके लिए वह अपनी असम्भव आकांक्षाकी आश्चर्यजनक सफलतासे वंचित रह गया; मानो अपनी ही गलतीसे आज वह अपनी नामुमकिन मुरादोंकी ताज्जुब-भरी कामयाबीसे चूक गया। मानो वर्षाकी आवाजके साथ दूरसे आती-हुई भैरवीकी तान उससे कहने लगी—'यह जगना ही सपना है, यह दुनिया ही झूठ है।'

उसके दूसरे दिन भी रासलीला थी; और दरवानको भी छुट्टी दे दी गई थी। फणिभूषणका हुक्म था कि 'आज रात-भर ड्योढ़ीका दरवाजा खुला रखा जाय।' दरवानने कहा, "मेलेमें

हर जगहसे हर तरहके आदमी आते-जाते रहते हैं, दरवाजा खुला रखना ठीक नहीं।" पर फणिभूषणने उसकी एक न सुनी। दरवानने कहा, "तो फिर मैं रात-भर यहीं रहकर पहरा दूंगा।" फणिभूषणने कहा, "नहीं, यह नहीं होगा, तुम्हें रासलीला देखने जाना ही पड़ेगा।" दरवान बड़े चक्करमें पड़ गया, 'इन्हें हो क्या गया !'

दूसरे दिन शाम ही से दीआ बुझाकर फणिभूषण अपने इसी कमरेमें इसी खिड़कीके पास आकर बैठ गया। आकाशमें बिन-बरसे बादल उमड़ रहे थे; और चारों ओर जल्द किसी एक अनिश्चित और अनजान-अपरिचितके आनेकी इन्तजारीका सन्नाटा था। मेढ़कोंकी लगातार होनेवाली टर्टर और रासलीलाके गीतोंकी तान भी उस सन्नाटेमें खलल न डाल सकी; बल्कि वह उसमें एक तरहका बेमेल और अजीब रंग जमा रही थी।

बहुत रात बीते, जब कि मेढ़क झींगुर और रासलीलाके गीतने चुपकी साध ली और आधी रातके बाद गहरे अँधेरेपर एक-और अँधेरा आ जमा, तब, फणिभूषणको ऐसा लगा कि 'हाँ, अब समय हो आया, यही वक्त है !

कलकी तरह नदीके किनारे घाटपर फिर वही ठकठक और छमछम आवाज सुनाई दी; लेकिन फणिभूषणने उधर देखा नहीं। उसे डर लगने लगा कि कहीं अधीर इच्छा और अशान्त चेष्टासे, बेचैन तबीयत और घबराहटसे की जानेवाली कोशिशोंसे, उसकी सारी इच्छाएँ, तमाम कोशिशें फिजूल न चली जायें, कहीं

उसके आग्रह और आवेशका जोश उसकी ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्तिपर कोई असर न डाल दे, उसकी इन्तजारी और ख्वाहिशकी बेचैनी उसकी आँख और कानोंको कहीं वहमके गड्ढेमें न ढकेल दे। इसके लिए उसने अपनी सारी ताकत और तमाम कोशिशें अपने मनको थिर और मजबूत रखनेमें लगा दीं। वह पत्थरके पुतलेकी तरह कठोर और स्थिर होकर बैठा रहा।

'वही तो है! ठीक कलकी-सी पायजेबोंकी आवाज धीरे धीरे घाटकी सीढ़ियाँ पार करके आगे बढ़ती हुई खुले हुए फाटकके भीतर घुस रही है! साफ तो सुनाई दे रहा है, अन्तःपुरकी गोल सीढ़ियोंपर घूम-घूमकर चढ़ती हुई आवाज ऊपर ही तो आ रही है!' – सोचते-सोचते बेचारा अपनेको सम्हाल न सका। उसका हृदय-मन तूफानमें पड़ी नावकी तरह पछाड़ें खाने लगा। यहाँ तक कि दम रुकनेकी नौबत आ गई। – 'गोल सीढ़ियोंको पार करके वह आवाज बरामदेमें होकर धीरे-धीरे घरके पास आने लगी। अन्तमें ठीक कमरेके दरवाजेके पास आकर ठिठककर खड़ी रह गई। बस, अब सिर्फ एक चौखट पार करनेकी देर है!'

फणिभूषणसे रहा न गया, उसका रुका हुआ आवेग, दबा हुआ जोश, एक छनमें खूब तेजीके साथ उफनकर आपेसे बाहर गिरने लगा; और फिर वह बिजलीकी तरह तड़ककर चौकीपरसे उठ बैठा; और रो-रोकर चीख उठा—"मणि! मणि! मेरी मणि!"

और उसी क्षण वह चौंककर जाग गया; और देखा कि खुद

उसीके रोने-चिल्लानेकी दर्दनाक आवाजने घरकी खिड़कियों तकको जगा दिया है; ऐसा मालूम हुआ कि वे भी उसके साथ चीख उठी हैं, काँपने लगी हैं। बाहर वही मेढ़कोंकी 'टर्टर' और 'रासलीला'के लड़कोंका बेसुरा राग सुनाई दे रहा था।

फणिभूषणने अपनी तकदीरपर जोरसे हाथ दे मारा, 'हाय रे हाय, सब-कुछ मिलते-मिलते रह गया !'

दूसरे दिन मेला उठ गया। दूकानदार और 'रासलीला'वाले सब चले गये। फणिभूषणने हुक्म दिया कि 'आज शामके बाद मकानमें हमारे सिवा और कोई नहीं रहने पायेगा।' नौकरोंने समझा कि बाबू साहब किसी तंत्र-मंत्रकी साधना कर रहे होंगे। फणिभूषणने दिन-भर कुछ खाया-पीया नहीं, उपासा ही रहा।

सूने मकानमें शाम होते ही वह खिड़कीके पास आकर बैठ गया। उस दिन आकाशमें कहीं भी बादल देखनेको न थे; और धुली-हुई साफ हवामेंसे तारे खूब जोरसे चमकते हुए दिखाई दे रहे थे। कृष्णपक्षकी दशमी थी। चाँद उगनेमें अभी बहुत देर थी। मेला खतम हो जानेसे नदीमें भी नावोंका नामो-निशान न था; और कई दिनों तक मेलेके भीड़-भब्भड़में जगते रहनेके कारण थके हुए गाँववाले भी सब सो-सा गये थे।

फणिभूषण एक कुर्सीपर बैठा हुआ उसकी पुश्तपर सिर रखे ऊपरको मुँह किये तारे देख रहा था। सोच रहा था कि एक दिन जब उसकी उमर उन्नीस सालकी थी, जब वह कलकत्ताके कालेजमें पढ़ता था, शामके वक्त जब कालेज-स्कायरके कम्पनी बागमें मुलायम दूबके गलीचेपर बाँहपर सिर रखे चित लेटकर

अनादिकालके इन तारोंकी ओर देखा करता था, तब उसे याद आती थी नदी-किनारेकी उस ससुरालकी, जहाँ किसी एकान्त कोठरीमें चौदह सालकी युवती मणिमालाका कच्चा-कोमल हृदय-मन और मुखड़ा हरदम उसकी यादमें उदास बना रहता। तबका बिछोह कितना उमंग-भरा और कैसा मीठा था, तबके उन तारोंकी चमक और रोशनीके कम्पनसे हृदयके यौवन-स्पन्दन और दिलकी धड़कनसे कितना गहरा और कैसा विचित्र सम्बन्ध था, कुछ कहते नहीं बनता। तब तो सिर्फ काव्यमें पढ़े हुए उस कथनकी याद आती थी जिसमें 'वसन्तरागेण यतितालाभ्यां' बज-बज उठता है। आज वही आकाश है, वही तारे हैं; आज उन्हीं तारोंने आकाशमें आगसे 'मोह-मुद्गर'के श्लोक लिख रहे हैं, कह रहे हैं, 'संसारोऽयमतीव विचित्रः।' हाय री दुनिया, तू भी क्या अजब तमाशा है!

देखते-देखते तारे सब विलीन हो गये। आकाशसे एक अन्धकार उतरा और जमीनसे एक अन्धकार ऊपरको चढ़ा; आँखोंके ऊपर-नीचेके पलकोंकी तरह दोनों आकर एकसाथ मिल गये। आज फणिभूषणका चित्त शान्त था। वह निश्चित जानता था कि आज उसका अभीष्ट सिद्ध होगा, आज उसके बहुत दिनोंके अरमान पूरे होंगे; साधकके सामने मृत्यु अपना रहस्य खोल देगी।

कलकी रातकी तरह, फिर वही आवाज! आवाज नदीके पानीमेंसे निकलकर घाटकी सीढ़ियोंपर चढ़ी। फणिभूषण दोनों आँखें मीचकर थिर और मजबूत मनसे ध्यानका आसन लगाकर बैठ गया। आवाज सूनी ड्योढ़ीके भीतर दाखिल हुई; और

अन्तःपुरकी गोल सीढ़ियोंसे घूमती हुई ऊपर चढ़ने लगी। आवाज लम्बे बरामदेको पार करके आगे बढ़ी; और उस कमरेके दरवाजेके पास आकर कलकी तरह फिर क्षण-भरके लिए ठिठककर खड़ी हो गई।

फणिभूषणका मन व्याकुल हो उठा, उसके सारे अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो उठे, मारे खुशी और उम्मीदोंके रोंगटे खड़े हो गये, पर आज उसने आँखें नहीं खोलीं। आवाज चौखट पार करके अँधेरे कमरेमें दाखिल हुई। अलगनीके पास, जहाँ मणिकी साड़ी चुनी-चुनाई टँगी थी; आलेके सामने, जहाँ किरासिनका लैम्प खड़ा था; तिपाईके पास, जहाँ पानदानमें पान सूखे पड़े थे; और तरह-तरहकी चीजोंसे भरी उस विचित्र आलमारीके पास, हर जगह एक-एक बार खड़ी हो-होकर अन्तमें वह फणिभूषणके बहुत ही पास आकर ठिठककर खड़ी हो गई।

तब फणिभूषणने आँखें खोलीं; और देखा कि कमरेमें अभी अभी निकले हुए चाँदकी चाँदनी अपनी खुशियाँ बखेर रही है; और उसकी कुर्सीके ठीक सामने एक 'कंकाल' खड़ा है, औरतकी शकलमें हड्डियोंका एक ढाँचा! उस कंकालकी आठों उंगलियोंमें अंगूठियाँ चमक रही हैं, हाथोंपर रतनचक्र है, पहुंचोंमें कड़े हैं, बाँहमें बाजूबंद, गलेमें हार, माथेपर बैना और माँगमें सिन्दूर! सिरसे लेकर पैर तक उसकी हड्डी-हड्डीमें तरह-तरहके जेवर-गहने हीरे-जवाहरातकी झलकसे झलमला रहे हैं। गहने सबके सब ढीले, इतने ढीले कि खिसककर गिर-पड़ने-लायक, पर अपनी जगहसे कोई खिसकता नहीं! सबसे भयंकर हैं उसके अस्थिमय

चेहरेपर चमकती हुई दो आँखें ! वही काली पुतलियाँ, वही घनी लम्बी पलकें, वही सजल चमक, वही अविचलित दृढ़ शान्त दृष्टि ! आजसे अठारह साल पहले, एक दिन रोशनीसे जगमगाते हुए विवाह-मंडपमें नौबतकी शहाना-रागिनीमें फणिने जो बड़ी-बड़ी दो काली छलकती हुई आँखें 'शुभदृष्टि'में पहले-पहल देखी थीं वे ही आँखें आज उसने सावनकी निशीथ रातमें, कृष्णपक्षके चाँदकी चाँदनीमें देखीं। देखकर उसके सारे शरीरका खून बरफ-सा ठंडा हो गया। उसने जी-जानसे आँखें मीचनेकी कोशिश की, पर मीच न सका। उसकी आँखें मुरदेकी आँखोंकी तरह जैसीकी तैसी पथराकर रह गईं।

तब, उस कंकालने स्तम्भित निश्चल जड़वत् सुन्न फणिभूषणके चेहरेकी ओर अपनी दृष्टि स्थिर रखकर, उसकी आँखोंमें अपनी आँखें गड़ाकर, दाहने हाथकी उंगलीका इशारा करके चुपकेसे उसे अपनी ओर बुलाया। उसकी चारों उंगलियोंकी हड्डियोंमें हीरेकी अंगूठियाँ बिजली-सी चमक-चमक उठीं।

फणिभूषण मंत्रमुग्ध मूढ़की तरह उठ खड़ा हुआ। कंकाल दरवाजेकी ओर चला। हड्डियों हड्डियोंमें और गहनों गहनोंमें लगकर कठोर शब्द होने लगा। फणिभूषण रस्सीसे बँधी कठ-पुतलीकी तरह उसके पीछे-पीछे चला। बरामदा पार होकर कंकाल घोर अन्धकारमय गोल सढ़ियोंसे घूमता और खटखट छमछम आवाज करता हुआ नीचे उतरा। फिर नीचेका बरामदा पार कर दीप-हीन सुनसान अँधेरी ड्योढ़ीके पास पहुंचा। अन्तमें ड्योढ़ी पार होकर मुरम-बिछे सुनसान बगीचेके रास्तेसे बाहर

निकल गया। सुरमपर हड्डियोंके पैर पड़नेकी-सी आवाज होने लगी। चाँदकी क्षीण चाँदनी पेड़की घनी डालोंमें इस तरह हिलग रही थी कि उसे छुटकारा मिलना मुश्किल हो रहा था। बरसातकी महकसे महकते हुए उस अन्धकारमय छायाकी राहसे जुगनुओंके उजालेमें वे दोनों नदीके घाटपर पहुंचे। आगे-आगे कंकाल था और पीछे-पीछे फणिभूषण।

आवाज कल जिन सीढ़ियोंसे चढ़ी थी उन्हीं सीढ़ियोंसे गहनोंसे शोभित कंकाल अपनी दुबली-पतली सीधी देह और सीधी चाल चलता और कठिन शब्द करता हुआ एक-एक डग उतरने लगा। भरी हुई बरसातकी नदीके तेज बहावपर चाँदनीकी एक लम्बी लकीर-सी छिटक रही थी।

कंकाल नदीमें उतरा, उसका पीछा करनेवाले फणिभूषणने भी पानीमें कदम रखा। पानीका स्पर्श लगते ही फणिभूषणकी नींद खतम हो गई। सामने अब उसका कोई पथप्रदर्शक न था, सिर्फ नदीके उस पार पेड़ोंकी कतार चुपचाप सन्न खड़ी यह तमाशा देख रही थी; और उसके सिरके ऊपर चाँदका टुकड़ा शान्त और दंग होकर न-जाने क्या देख रहा था।

फणिभूषण बार-बार एड़ीसे चोटी तक सिहर-सिहर उठा; और लड़खड़ाते पैरोंसे आगे बढ़कर बहावमें जा पड़ा। यद्यपि वह तैरना जानता था, पर शरीरकी नाड़ियाँ उसके बसमें नहीं थीं; स्वप्नमेंसे केवल एक क्षणके लिए जागरणके तटपर आकर दूसरे ही क्षण वह असीम और अथाह नींदमें गरक हो गया।

कहानी खतम करके मास्टर साहब थोड़ी देरके लिए चुप हो रहे। सहसा चुप होते ही ऐसा मालूम हुआ मानो इस बीचमें

दुनियाके और सब-कोई खामोश और दंग होकर हाथपर हाथ धरे बैठे थे। बहुत देर तक मैं कुछ बोला नहीं; और अँधेरेमें वे मेरे चेहरेका भाव भी न ताड़ सके।

अन्तमें उन्होंने मुझसे पूछा—"आपको क्या मेरी बातपर विश्वास नहीं हो रहा है?"

मैंने पूछा—"आप खुद क्या इसे सच समझते हैं?"

उन्होंने कहा—"नहीं तो। क्यों नहीं, उसका सबब बताता हूं। पहली बात तो यह है कि प्राकृति-महारानी उपन्यास लेखिका नहीं हैं, उनके हाथमें और-भी बहुतसे काम हैं—"

मैं बोल उठा—"दूसरे, मेरा ही नाम फणिभूषण साहा है।"

स्कूल-मास्टरने जरा भी लज्जित न होकर कहा—"तो मेरा अनुमान ठीक ही था। आपकी स्त्रीका नाम क्या था?"

मैंने कहा—"नृत्यकाली।"

सुभा

लड़कीका नाम जब सुभाषिणी रखा गया था, तब कौन जानता था कि वह गूँगी होगी? इसके पहले, उसकी दो बड़ी बहनोंके सुकेशिनी और सुहासिनी नाम रखे गये हैं; इसीसे, काफिया मिलानेकी गरजसे उसके बापने छोटी लड़कीका नाम रख दिया सुभाषिणी। अब उसे संक्षेपमें सब 'सुभा' कहते हैं।

काफी खोज और खर्चके साथ दोनों बड़ी लड़कियोंका ब्याह हो चुका है; अब छोटी लड़की सुभा मा-बापके खामोश हृदयके बोझकी तरह घरकी रौनक बढ़ा रही है।

जो बोलती नहीं वह सब-कुछ महसूस करती है, यह बात सबकी समझमें नहीं आती ; और इसीसे सुभाके सामने ही सब उसके भविष्यके बारेमें तरह-तरहकी चिन्ता-फिक्रकी बातें किया करते हैं। इस बातको वह बचपन ही से समझ चुकी है कि वह विधाताकी बददुआके तौरपर अपने बापके घर आकर पैदा हुई है। इसका नतीजा यह हुआ कि वह हमेशा अपनेको सबकी निगाहसे बचाये रखनेकी कोशिश करती रहती है। वह मन ही मन सोचा करती कि उसे सब भूल जायँ तो अच्छा। पर जहाँ दर्द है उस जगहको क्या कभी कोई भूल सकता है ? मा-बापके मनमें वह हरवक्त दर्दकी तरह जीती-जागती बनी ही रहती।

खासकर उसकी मा उसे अपनी ही एक कसर या गलती समझती है। क्योंकि हरएक मा लड़केकी बनिस्बत लड़कीको कहीं ज्यादा अपने हिस्सेके रूपमें देखती है। और, लड़कीमें कोई कमी होनेपर वे उसे अपने लिए मानो खास तौरसे शर्मका सबब मानती हैं। सुभाके पिता वाणीकंठ तो बल्कि सुभाको अपनी और-और लड़कियोंकी बनिस्बत कुछ ज्यादा प्यार करते हैं ; पर मा उसे अपने गर्भका कलंक जानकर उससे उदास-सी रहती है।

सुभाके बोलनेकी जबान नहीं है, पर उसके लम्बी-लम्बी पलकों-शुदा बड़ी-बड़ी दो काली आखें जरूर हैं ; और उसके ओठ तो मनके भावके जरा-से इशारेपर कोमल नये चीकने पत्तेकी तरह काँप-काँप उठते हैं।

बातोंसे हम जो अपने मनके भाव जाहिर करते हैं उसको हमें बहुत-कुछ अपनी कोशिशसे गढ़ लेना पड़ता है, कुछ-कुछ तरजुमा

करनेके समान ही समझिये। और वह हरवक्त ठीक भी नहीं होता, शक्तिकी कमीसे अकसर उसमें भूल भी हो जाती है। लेकिन काली आँखोंको कभी कुछ भी तरजुमा नहीं करना पड़ता ; मन अपने-आप ही उनपर छाया डालता रहता है ; मनके भाव अपने-आप ही उस छायामें कभी फैलते और कभी सिकुड़ते रहते है। कभी ये आँखें चमक-चमककर जलने लगती हैं तो कभी उदास होकर बुझ-सी जाती हैं ; कभी डूबते हुए चाँदकी तरह टकटकी लगाये न-जाने क्या देखती रहती हैं तो कभी चंचल बिजलीकी तरह ऊपर-नीचे इधर-उधर चारों तरफ बड़ी तेजीसे छिटकने लगती हैं। और, खासकर मुँहके भावके सिवा जिसके पास जन्मसे ही और-कोई भाषा नहीं, उसकी आँखोंकी भाषा तो बेहद उदार और अथाह गहरी होती ही है ; करीब-करीब साफ सुथरे नील आकाशके समान। उन आँखोंको तो उदयसे लेकर अस्त तक, सुबहसे लेकर शाम तक और शामसे लेकर सुबह तक, छायालोककी खामोश रंगभूमि ही समझना चाहिए। बगैर-बोलीकी इस लड़कीमें विशाल प्रकृतिकी तरह एक जनहीन बड़प्पन है। यही वजह है कि साधारण लड़के-लड़कियाँ सबको उसका एक तरहका डर-सा बना रहता ; उसके साथ कोई खेलता नहीं। वह सुनसान दोपहरीकी तरह खामोश और बगैर-साथीके अकेली ही बनी रहती।

२

गाँवका नाम है चंडीपुर। उसके बगलसे बहनेवाली नदी बंगालकी एक छोटी-सी नदी है, गृहस्थके घरकी छोटी लड़कीके

समान। बहुत दूर तक उसका फैलाव नहीं है। उसके जरा भी आलस नहीं, वह अपनी छरछरी देह लिये अपने दोनों किनारोंकी रक्षा करती हुई अपना काम किये जाती है। दोनों किनारेके गाँवोंके सब लोगोंके साथ मानो उसका एक-न-एक सम्बन्ध हो गया है। दोनों तरफ गाँव हैं और पेड़ोंकी छायादार ऊँचे किनारे, जिनके नीचेसे गाँवकी लछमी स्रोतस्विनी नदी अपने आपको भूलकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई बहुत ही प्रसन्न चित्तसे, खूब खुशी-खुशी, अपने बेशुमार अच्छे कामोंके लिए बहती चली जा रही है।

वाणीकंठका घर नदीके ऐन किनारेपर है। उसका खपच्चियोंका बेड़ा, ऊँचा छप्पर, ग्वाल-घर, भुसकी गड्डियोंका ढेर, आम कटहर और केलोंका बगीचा हरएक नाववालेकी नजर अपनी तरफ खींचा करता है। ऐसे घरमें, आसानीसे चलनेवाली ऐसी सुखकी गृहस्थीमें, उस गूँगी लड़कीपर किसीकी नजर भी पड़ती है या नहीं मालूम नहीं। पर काम-काजसे ज्यों ही उसे जरा फुरसत मिलती त्यों ही चटसे वह उस नदीके किनारे जा बैठती।

प्रकृति मानो उसकी भाषाकी कमी पूरी कर देती है, कुदरत मानो उसकी तरफसे खुद बोल उठती है। नदीकी कलकल आवाज, लोगोंका शोरगुल, मल्लाहोंका भटियाली गाना, चिड़ियोंका चुहचुहाना, पेड़ोंकी मरमराहट, सब-कुछ चारों तरफकी चलने फिरनेकी हलचलके कम्पनके साथ एक होकर समुद्रकी तरंगोंकी तरह उस लड़कीके हमेशा-खामोश मनके किनारे तक बिलकुल पास आकर टूट-टूट पड़ता है। प्रकृतिकी ये तरह-तरहकी आवाजें

और अजीब-अजीब चालें, यह भी तो गूँगीकी ही भाषा है। बड़ी-बड़ी आँखों और उससे भी बड़ी पलकोंवाली सुभाकी भाषाका ही मानो वह सारी-दुनियामें फैला हुआ एक विस्तार है, जिसमें झींगुरोंकी झनकारसे गूँजती हुई हरी-हरी दूब-शुदा जमीनसे लेकर शब्दातीत नक्षत्र-लोक तक केवल इङ्गीत, सङ्गीत और भङ्गिमा, सिर्फ इशारे, हाव-भाव, रोना-बिलखना, लम्बी साँसें, गीत और सङ्गीत ही भरा पड़ा है।

और दोपहरको जब माझी और मल्लाह खानेके लिए घर जाते, गृहस्थ और पक्षी आराम करते, पार उतारनेवाली नावें बन्द रहतीं, इन्सानसे भरी दुनिया अपने सारे काम-काजोंके बीचमें अचानक रुककर बगैर आदमीके सुनसान होकर डरावनी शकल अख्तियार करती, तब रुद्र महाकाशके नीचे सिर्फ एक गूँगी प्रकृति और एक गूँगी लड़की दोनों आमने-सामने चुपचाप बैठी रहतीं ; एक दूर तक फैली हुई धूपमें और दूसरी छोटेसे पेड़की छायामें।

सुभाकी खास सहेली कोई है ही नहीं, सो बात नहीं। ग्वालघरमें दो गायें हैं ; एकका नाम है सरबती और दूसरीका पार्वती। ये नाम सुभाके मुँहसे उन गायोंने कभी नहीं सुने ; पर उसके पैरोंकी आहट वे खूब पहचानती हैं। सुभाका बिन-बातोंका एक ऐसा खामोश करुण स्वर है जिसका मतलब वे बोलीकी बनिस्बत ज्यादा आसानीसे समझ जाती हैं। सुभा कभी उनपर लाड़ करती है, कभी डाटती है और कभी आरजूका भाव दिखाकर उन्हें मना भी लेती है। इन बातोंको उसकी 'सारो' और

'पारो' इन्सानसे कहीं ज्यादा और अच्छी तरह समझ जाती हैं।

सुभा ग्वालघरमें घुसकर अपनी दोनों बाँहोंसे जब 'सारो' की गरदन पकड़कर उसके कानके पास अपनी कनपटी रगड़ती है तब 'पारो' प्यारकी निगाहसे उसकी तरफ देखती हुई उसकी देह चाटने लगती है। सुभा दिन-भरमें कमसे कम दो-तीन बार तो नियमसे ग्वालघरमें जाया करती। इसके सिवा, अनियमित आना-जाना भी बना रहता। घरमें जिस दिन वह कोई कड़ी बात सुनती, उस दिन उसका वक्त अपनी गूंगी सखियोंके पास ही बीतता। सुभाकी बरदाश्त करनेवाली और रंजसे खामोश चितवनको देखकर न-जाने कैसी एक अन्दाज करनेवाली अन्धी अन्दरूनी ताकतसे वे उसके मनकी बात और दर्दको समझ जातीं ; और उसकी देहसे सटकर धीरे-धीरे उसकी बाँहोंपर सींग घिस-घिसकर अपनी खामोश व्याकुलतासे उसे तसल्ली देनेकी कोशिश करतीं।

इनके सिवा, बकरी और बिल्लीका बच्चा भी था ; उनके साथ सुभाकी ऐसी बराबरीकी मित्रता तो नहीं थी ; फिर भी वे उससे मुहब्बत रखते और उसके माफिक चलते। बिल्लीका बच्चा, चाहे दिन हो या रात, जब-तब सुभाकी गरम गोदपर बिना किसी संकोचके अपना हक जमा लेता और सुखकी नींद सोनेकी तैयारी करता। और, सुभा जब उसकी गरदन और पीठपर अपनी कोमल उंगलियाँ फेर देती, तब तो वह भीतरसे ऐसा भाव जाहिर करने लगता जैसे उससे उसकी नींदमें खास मदद मिल रही हो।

ऊँचे दरजेके जीवोंमें सुभाको और भी एक साथी मिल गया।

था ; लेकिन उसके साथ उसके ठीक कैसे ताल्लुकात थे, इसकी पक्की खबर बताना मुश्किल है। क्योंकि उसके बोलनेकी जबान है और यह है गूंगी ; लिहाजा दोनोंकी बोली एक न थी।

वह था गुसाँइयोंका छोटा लड़का प्रताप। लड़का बिलकुल आलसी और निठल्ला था। उसके मा-बापने बड़ी कोशिशोंके बाद इस बातकी उम्मीद तो कतई छोड़ दी थी कि वह काम-धन्धा करके घर-गृहस्थीकी कुछ मदद या तरक्की करेगा। निठल्लोंके लिए यह बड़ा सुभीता है कि घरके लोग उनपर भले ही नाखुश रहें, पर बाहरवालोंको उनपर काफी मुहब्बत होती है ; क्योंकि किसी काममें फँसे न रहनेसे वे सरकारी मिलकियत-से बन जाते हैं। शहरोंमें जैसे घरके ताल्लुकसे बिलकुल अलग एक-आध सरकारी बाग-बगीचेका रहना निहायत जरूरी है, वैसे ही गाँवोंमें दो-चार निठल्ले सरकारी आदमियोंका रहना बहुत ही आवश्यक है। काम-काजमें, हँसी-खेलमें, जहाँ कहीं एक आदमी की कमी दीखी, वहीं वे चटसे हाथके पास ही मिल जाते हैं।

प्रतापको मछली पकड़नेका बड़ा शौक है। इससे उसका आसानीसे बहुत-सा वक्त कट जाता है। तीसरे पहर नदीके किनारे अकसर वह इस काममें मशगूल दिखाई देता ; और इसी बहाने सुभासे उसकी अकसर मुलाकात हुआ करती। चाहे किसी भी काममें हो, बगलमें एक साथी मिल जानेसे प्रताप रहता बड़ा खुश है। मछली पकड़ते समय खामोश साथी ही सबसे अच्छा समझा जाता है ; इसलिए प्रताप सुभाकी खूबी जानता और कदर करता है। यही वजह है कि और-सब तो

सुभाको 'सुभा' कहते, और प्रताप उसमें और-भी जरा प्यार मिलाकर सुभाको 'सू' कहकर पुकारता।

सुभा इमलीके पेड़के नीचे बैठी रहती; और प्रताप पास ही जमीनपर बैठा हुआ, पानीमें काँटा डालकर, उसीकी तरफ देखता रहता। प्रतापके लिए सुभाकी तरफसे रोज एक पान बँधा हुआ था; और उसे वह खुद अपने हाथसे लगाकर लाती। और शायद, बहुत देर तक बैठे-बैठे देखते-देखते उसकी तबीयत होती कि वह प्रतापको कोई एक खास मदद पहुंचाये, उसके किसी काममें सहारा दे; उसके ऐसा जीमें आता कि वह किसी तरह जता दे कि दुनियामें वह भी एक कम जरूरी चीज नहीं। पर उसके पास न तो कुछ करनेको था और न वह कुछ कर ही सकती थी। तब वह विधातासे ऐसी दुआ माँगती कि किसी जादू मन्तरसे चटसे उसे कोई ऐसी ताकत या चीज मिल जाय कि जिसे दिखाकर प्रतापको वह दंग कर दे; और फिर वह भी कहने लगे—"अच्छा! 'सू' में यह करामात! मुझे क्या मालूम था!"

मान लो, सुभा अगर जलकुमारी होती और धीरे-धीरे पानीमेंसे निकलकर साँपके माथेकी मणि घाटपर रख जाती; प्रताप अपने इस तुच्छ कामको छोड़कर उस मणिको लेकर पानीमें डुबकी लगाता; और पातालमें जाकर देखता कि चाँदीके महलमें सोनेके पलंगपर वह कौन बैठी है! अचम्भेसे मुंह बाकर कहता, 'अरे! यह तो अपने वाणीकठके घरकी वही गूँगी लड़की है 'सू'! मेरी सू! आज वह मणियोंसे जगमगाती हुई गम्भीर निस्तब्ध पातालपुरीकी एकमात्र शानदार गम्भीर और खामोश

पातालपुरीकी इकलौती राजकुमारी बनी बैठी है !' तो ? तो क्या यह बात हो ही नहीं सकती, क्या यह बिलकुल ही नामुमकिन है ? असलमें कुछ भी नामुमकिन नहीं। मगर फिर भी, 'सू' बगैर-रिआयाकी पातालपुरीके राज-घरानेमें पैदा न होकर वाणी-कण्ठके घर जनमी है ; और इसलिए वह आज गुसाँइयोंके घरके लड़के प्रतापको किसी भी तरह ताज्जुबमें नहीं डाल सकती।

४

सुभाकी उमर आये दिन बढ़ती ही जा रही है। धीरे-धीरे मानो वह आपने-आपमें कुछ महसूस कर रही है। मानो किसी एक पूनोंके दिन, किसी समुद्रसे एक ज्वार-सी आकर उसकी रूहको किसी एक नई और न-कही-जानेवाली जिन्दादिलीसे भर-भर देती है। अब मानो वह अपने आपको देख रही है, कुछ सोच रही है, कुछ पूछ रही है ; पर समझ कुछ नहीं पाती।

पूनोंकी गहरी रातमें उसने एक दिन धीरेसे अपने कमरेकी खिड़की खोलकर डरते-डरते मुँह निकालकर बाहरकी ओर देखा। देखा कि पूर्णिमा-प्रकृति भी उसीकी तरह लेटी-हुई दुनियाके ऊपर अकेली पड़ी जाग रही है ; वह भी यौवनके रहस्यसे आनन्दसे खुशीसे उदासीसे असीम निर्जनताके बिलकुल आखिरी हद तक, यहाँ तक कि उसे भी पार करके, चुपचाप स्थिर पड़ी है, एक लफ्ज भी उसके मुँहसे नहीं निकल रहा है। मानो स्थिर निस्तब्ध प्रकृतिके एक किनारेपर उससे भी स्थिर और निस्तब्ध एक भोली बालिका खड़ी हो।

इधर लड़कीकी शादीकी फिकरमें मा-बाप बहुत ही व्याकुल

हो उठे हैं। और गाँवके लोग भी जहाँ-तहाँ बुराई कर रहे हैं। यहाँ तक कि जातिसे निकाल दिये जानेकी भी अफवाह उड़ रही है। वाणीकंठकी वैसे हालत अच्छी है, खाते-पीते आराममें हैं; और इसलिए उनके दुश्मनोंकी भी कमी नहीं।

स्त्री-पुरुषोंमें इस बातदर बहुत-कुछ सलाह-मशविरा हुआ। कुछ दिनोंके लिए वाणीकंठ गाँवसे बाहर परदेश चले गये।

अन्तमें एक दिन वापस आकर स्त्रीसे बोले—"चलो, कलकत्ता चले चलें।"

कलकत्ता जानेकी तैयारियाँ होने लगीं। कुहरेसे ढके हुए सुबहकी तरह सुभाका सारा हृदय आँसुओंकी भापसे ऊपर तक भर आया। एक अज्ञात दहशतके मारे वह कुछ दिनोंसे बेजबान जानवरकी तरह लगातार अपने मा बापके साथ-साथ रहती; और अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उनके मुंहकी ओर ताककर मानो कुछ समझनेकी कोशिश किया करती; पर वे कोई भी बात समझा कर उसे बताते ही न थे।

इसी बीचमें, एक दिन तीसरे पहर घाटके किनारे मछली पकड़नेकी धुनमें लगे हुए प्रतापने हँसते हँसते पूछा—"क्यों री, सू, मैंने सुना है कि तेरे लिए दूल्हा मिल गया है, तू ब्याह करने कलकत्ता जा रही है? देखना, कहीं हम लोगोंको भूल न जाना!" कहकर वह पानीकी तरफ देखने लगा।

तीरसे बिंधी हुई हरिणी जैसे शिकारीकी ओर ताकती और आँखों-ही-आँखोंमें कहती रहती है, 'मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था', सुभाने भी लगभग वैसे ही प्रतापकी ओर देखा। उस दिन

वह पेड़के नीचे नहीं बैठी। वाणीकंठ बिस्तरसे उठकर बैठे तमाकू पी रहे थे। सुभा उनके पैरोंके पास बैठकर उनके मुँहकी तरफ ताकती हुई रोने लगी। अन्तमें लड़कीको ढाँढ़स और तसल्ली देते हुए बापके सूखे गालोंपर आँसूकी दो बूंदें ढलक पड़ीं।

कल कलकत्ता रवाना होनेकी साइत है। सुभा ग्वालघरमें अपनी सहेलियोंसे विदा लेने गई। उन्हें अपने हाथसे खिलाकर गलेमें बाँह डालकर दोनों आँखोंसे खूब जी भरके बातचीत करने लगी। उसकी दोनों आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे।

उस दिन उजाले पाखकी दसमीकी रात थी। सुभा अपनी कोठरीमेंसे निकलकर अपने उसी हमेशाके जाने-पहचाने हुए नदी किनारेके कच्चे घाटके पास घासपर औंधी लोट गई। मानो वह अपनी और अपने-सरीखी तमाम गूंगी मानव-जातिकी धरती मातासे अपनी दोनों बाँहोंसे लिपटकर कहना चाहती है—"तू मुझे कहीं मत जाने दे मा, मेरी तरह तू भी मुझे अपनी बाँहोंसे पकड़े रख, कहीं मत जाने दे।"

५

कलकत्ताके एक किरायेके मकानमें एक दिन सुभाकी माने सुभाको पहरा-उढ़ाकर खूब अच्छी तरह सजा दिया। कसकर बाल बाँध दिये, जूड़ेमें जरीका फीता लपेट दिया, गहनोंसे लादकर उसकी कुदरती खूबसूरतीको भरसक मिटा दिया। सुभाकी दोनों आँखोंसे आँसू बह रहे थे; आँखें कहीं सूज न जायँ इस खयालसे माने उसे बहुत समझाया-बुझाया और आखिरमें फटकारा भी, पर आँसुओंने फटकारकी कुछ भी परवाह न की।

उसी दिन कई मित्रोंके साथ वर स्वयं कन्या देखने आया। लड़कीके मा-बाप चिन्तित शङ्कित और घबड़ा-से उठे। मानो देवता खुद अपनी वलिके पशुको पसन्द करने आये हों। भीतरसे काफी डाट-फटकार बताकर, लड़कीके आँसुओंकी धाराको और-भी तेज करके उसे इम्तहान लेनेवालोंके सामने भेज दिया गया।

परीक्षकोंने बहुत देर तक देख-भाल करके कहा—"ऐसी बुरी तो नहीं है।"

खासकर बालिकाका रोना देखकर वे समझ गये कि इसके हृदय है और उसमें दर्द भी; और, हिसाब लगाकर देखा कि जो हृदय आज मा-बापके बिछोहकी बात सोचकर इस तरह रो-बिलख रहा है, आखिर कल वह उन्हींके काम आयेगा। सीपके मोतीकी तरह बालिकाके आँसुओंकी बूंदें खुद उसीकी कीमत बढ़ाने लगीं; उसकी तरफसे और-किसीको कुछ कहना ही नहीं पड़ा।

पत्रा देखकर, खूब अच्छे मुहूर्तमें सुभाका ब्याह हो गया।

गूंगी लड़कीको दूसरेके हाथ सौंपकर मा-बाप अपने गाँव लौट आये। और तब कहीं उनकी जाति और परलोककी रक्षा हुई।

सुभाका दूल्हा पछाँहकी तरफ नौकरी करता है। ब्याहके बाद जल्द ही वह स्त्रीको लेकर अपनी नौकरीपर चला गया।

एक हफ्तेके अन्दर सुसरालके सब-कोई समझ गये कि नई बहू गूंगी है; पर किसीने यह न समझा कि इसमें बहूका कोई कसूर नहीं, उसने खुद किसीको कोई धोखा नहीं दिया।

उसकी दोनों आँखोंने सभी बात कह दी थी, लेकिन कोई उसे समझ नहीं सका। अब वह चारों तरफ देखती रहती है, उसे अपने मनकी बात कहनेकी भाषा नहीं मिलती। जो गूँगेकी भाषा समझते थे, उसके जनमसे जाने-पहचाने वे चेहरे यहाँ उसे नहीं दिखाई देते। इससे, बेचारी भोलीभाली बालिकाके गूंगे हृदयके भीतर ऐसा रोना शुरू हो गया जो न तो साफ जाहिर होता था, न उसकी कोई हद ही थी। अन्तर्यामीके सिवा और कोई भी उसे सुन ही न सका।

अबकी बार उसके पति आँखों और कानोंसे अच्छी तरह ठोंक-बजाकर एक बोलनेवाली लड़कीको ब्याह लाये।

सम्पादक

अपनी स्त्रीकी मौजूदगीमें प्रभाके बारेमें मुझे कोई भी चिन्ता नहीं थी। तब प्रभाकी बनिस्बत प्रभाकी मासे ही मेरी ज्यादा दिलचस्पी थी।

उन दिनों सिर्फ प्रभाका हँसना-खेलना देखकर, उसकी आधी-आधी तोतली बोली सुनकर और थोड़ी देरके लिए उसे लाड़-प्यार करके ही मेरी तबीयत भर जाती थी। जब तक अच्छा लगता, उसे हिलाया-डुलाया करता; और जब वह रोने लगती तो उसकी माकी गोदमें सौंपकर छुट्टी पा जाता। यह बात कभी भी मेरे ध्यानमें ही नहीं आई कि किसी दिन मुझे ही बड़ी चिन्ता और कोशिशसे उसे पाल-पोसकर बड़ा करना है।

आखिर जब एक दिन अचानक और बेवक्त स्त्रीका देहान्त हो गया, तो उस दिन वह अपनी माकी गोदमेंसे खिसककर मेरी गोदमें आ पड़ी; और मैंने उसे छातीसे लगा लिया।

पर एक बात अब तक मेरी समझमें नहीं आई कि बिना माकी बच्चीको दूने लाड़-प्यारसे पालना मेरा फर्ज है इस बातको मैं ज्यादा सोचता था, या पत्नी-हीन पिताकी परम स्नेहसे रक्षा करना उसका फर्ज है इस बातको वह ज्यादा महसूस करती थी? लेकिन, छै वर्षकी उमरसे ही उसने 'बड़ी-बूढ़ी' जैसा बरताव करना शुरू कर दिया था। मुझे साफ दिखाई देने लगा कि जरा-सी लड़की अपने बापकी अकेली देखरेख करनेवाली घरकी मालिकिन बननेकी कोशिश कर रही है।

और, मैंने भी मन-ही-मन हँसते हुए अपनेको उसके हाथ सौंप दिया। देखा कि ज्यों-ज्यों मैं आलसी और असहाय होता गया त्यों-त्यों उसे अच्छा मालूम होता रहा। मैं अगर अपने हाथसे कुड़ता टोपी या छतरी उठा लेता, तो वह ऐसा भाव दिखाती कि मानो उसके हकोंपर दस्तन्दाजी की जा रही हो। उसे 'बापूजी' जैसा इतना बड़ा गुड्डा इससे पहले कभी नहीं मिला, इसलिए बापूजीको खिला-पिलाकर, पहना-उढ़ाकर और बिछौनेपर सुलाकर वह दिन-रात बड़े आनन्दसे रहती। सिर्फ जब वह किताब लेकर पढ़ने बैठती तब उसे पढ़ाते वक्त मुझे अपने बापपनको जरा चेता लेना पड़ता।

पर बीच-बीचमें मुझे चिन्तामें पड़ जाना पड़ता कि लड़कीको अच्छे वरके हाथ सौंपनेके लिए तो काफी धनकी जरूरत पड़ेगी;

मेरे पास इतने रुपये कहाँ है? लड़कीको तो भरसक पढ़ा-लिखाकर योग्य बना दूंगा; लेकिन, अगर वह किसी निरे मूर्खके हाथ पड़े, तो उसकी क्या दशा होगी?

बहुत सोच-विचारके बाद मैंने पैसा पैदा करनेमें ध्यान लगाया। किसी सरकारी दफ्तरमें नौकरी करनेकी उमर तो निकल ही चुकी थी; और दूसरे किसी आफिसमें घुसनेकी भी ताकत नहीं। अन्तमें किताब लिखनेकी ठान ली; और उसी काममें लग गया।

बाँसकी नलीमें छेद हो जानेपर उसमें न तो तेल ही रखा जा सकता है, न पानी ही। असलमें उसकी धारण करनेकी ताकत ही जड़से मारी जाती है। उससे फिर घर-गृहस्थीका दूसरा कोई काम नहीं निकलता। हाँ, फूँकनेपर बिना खर्चके वंशी अच्छी बज सकती है। मैं निश्चित जानता था कि घर-गृहस्थीके किसी भी काममें जिस अभागेको बुद्धि काम नहीं देती, वह निःसन्देह अच्छी पुस्तक लिख सकता है। इसी बूतेपर मैंने एक प्रहसन लिखा; और लोगोंने उसे अच्छा भी बताया। और, एक दिन रंगमचपर उसका अभिनय भी हो गया।

अचानक नामवरीका जायका पाकर मैं ऐसी आफतमें फँस गया कि प्रहसन लिखनेकी आदत मुझसे फिर छूटी ही नहीं। दिन-दिन भर व्याकुल होकर चिन्तित चित्तसे मैं प्रहसन लिखनेमें ही लगा रहता।

एक दिनकी बात है, प्रभाने आकर बड़े लाड़से स्नेहकी हँसी हँसकर मुझसे पूछा—"बापूजी, नहाने नहीं जाओगे?"

मैं गरज उठा—"जा-जा, अभी जा, लिखते वक्त दिक न किया कर।"

बालिकाका मुँह शायद फूँकसे बुझाये-गये दीआकी तरह बुझ-सा गया; और कब वह रूठकर फटा हुआ हृदय लेकर चुपचाप वहाँसे चली गई, मुझे मालूम ही नहीं पड़ा।

नौकरानीको फटकार देता, नौकरको मारने दौड़ता, भिखारी भीख माँगने आता तो लकड़ी लेकर उसका पीछा करता। सड़कके किनारेपर ही मेरा घर था, जब कोई निर्दोष राहगीर जंगलेके बाहरसे मुझसे कहींका रास्ता पूछता, तो मैं उसे जहन्नुमका रास्ता बता देता। हाय-हाय, कैसी मुसीबत थी, इस बातपर किसीका ध्यान ही नहीं कि मैं कितना बढ़िया और कैसा मजेदार प्रहसन लिख रहा हूं?

पर, अफसोस इस बातका था कि जितना नाम हो रहा था और जितना मजा आ रहा था उतना रुपया न आता था। और तब रुपयोंकी बात मुझे याद भी नहीं थी। इधर प्रभाके लायक वरोंकी संख्या, अन्य पिताओंको 'कन्यादाय' से मुक्त करनेके लिए, गोकुलमें दिनों-दिन बढ़ती ही चली जा रही थी, उस तरफ मेरा कुछ ख्याल ही न था।

पेटमें जलन बिना हुए होश नहीं आता कि भूख कहाँ है! मेरा भी वही हाल था। इतनेमें एक अच्छा मौका हाथ लगा। जहीरगाँवके जमींदारने एक अखबार निकालना चाहा; और मुझे उसका सम्पादक बननेके लिए बहुत अनुरोध किया। तनखा भी बुरी नहीं थी। मैंने सम्पादकी स्वीकार कर ली।

सम्पादक बनकर कुछ दिन तो ऐसी तेजीके साथ लिखने लगा कि लोग मुझे रास्ता-चलते उंगलीके इशारेसे दिखाने लगे। और मैं भी अपनेको दोपहरके तेज-तर्रार सूरजके समान मुश्किल-दर्शन समझने लगा।

जहीरगाँवके पास ही अहीरगाँव था। दोनों गाँवोंके जमींदारों में आपसमें जबरदस्त दलबन्दी हो गई थी। पहले बात-बातपर लट्ठ चल जाया करते थे। अन्तमें दोनों फकीरोंने मैजिस्ट्रेटके आगे मुचलके देकर लट्ठबाजी बन्द कर दी है। अब पहलेके उन खूनी लठैतोंकी जगह मुझ जैसे सरस्वती-वाहनोंको मुकर्रर किया गया है। सभी कहने लगे कि मैंने गाँवकी इज्जत रख ली।

मेरे लेखोंके मारे अहीरगाँव अब सिर नहीं उठा सकता। उनके जाति-कुल और पुरखोंके इतिहासको मैंने शुरूसे लेकर आखीर तक काली स्याहीसे रंग दिया।

उस समय मेरी अवस्था बहुत अच्छी थी। खूब मोटा-ताजा भी हो गया था। मुंहपर हमेशा प्रसन्नताकी हँसी मौजूद रहती थी। अहीरगाँवके जमींदारके पुरखोंके लिए एक-एक ऐसा हृदय-विदारक वाक्यवाण छोड़ता कि सारा जहीरगाँव हँसते-हँसते फूटकी तरह खिल जाता। बड़े मजेमें था।

अहीरगाँवने भी एक अखबार निकाला। उसमें एक खूबी थी कि वह कोई भी बात ढककर न कहता था। ऐसे उत्साहके साथ ठेठ चालू भाषामें गालियाँ देता कि छापेके हरूफ तक शोर मचाकर आँखोंके सामने नाचने लगते; और इसलिए दोनों गावोंके लोग उसकी बातको साफ-साफ समझ जाते।

और मैं अपनी उसी पुरानी आदतके अनुसार इतने कूट-कौशलके साथ विपक्षियोंपर हमला करता रहा कि शत्रु-मित्र कोई भी उसे समझ ही न पाता कि आखिर उसका मतलब क्या है? नतीजा यह हुआ कि जीत होनेपर भी लोग समझते कि हार हमारी ही रही। आखिर झख मारकर सुरुचिके बारेमें एक उपदेश-पूर्ण लेख भी लिख डाला। पर अन्तमें जाकर वह भी एक बड़ी-भारी गलती ही साबित हुई। कारण, अच्छी और सही चीजका मजाक उड़ाना जितना आसान है, मजाककी चीजका मजाक उड़ाना उतना सहज नहीं। हनु-वंशी मनु-वंशियोंका जितनी सरलतासे मजाक उड़ा सकते हैं, मनु-वंशी हनु-वंशियोंके बारेमें उतनी कामयाबी कभी नहीं पा सकते। आखिर मेरी सुरुचिको उन लोगोंने दाँत दिखाकर एक तरहसे देश-निकाला ही दे दिया।

मेरे मालिक अब मेरी पहले-जैसी खातिर-तवज्जह भी नहीं करते। सभा वगैरहमें भी मेरी अब उतनी इज्जत नहीं रही जितनी पहले थी। रास्तेमें जाते हुए मुझसे लोग बिला-वजह मिला करते थे; अब वह बात भी जाती रही। अब तो मुझे देखकर कोई-कोई हँस भी देते हैं।

इस अरसेमें मेरे प्रहसनोंकी बात भी लोग बिलकुल भूल गये। यकायक मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं एक दिआसलाईकी सींक था और एक-आध मिनट जलकर बिलकुल आखिर तक जल चुका हूं।

साथ ही मन और दिमाग भी इतना निरुत्साहित हो गया था कि जमीनसे सिर दे मारनेपर भी एक लाइन नहीं लिख सकता

था। ऐसी मनमें आने लगी कि अब जीना फजूल है, जिन्दगीमें कोई सुख नहीं।

घरकी तरफ देखता हूं तो प्रभा मुझसे अब डरने लगी है। बगैर बुलाये सहसा मेरे पास आनेकी उसमें हिम्मत नहीं। वह समझ गई है कि ऐसे बापसे तो, जो मजेकी बातें लिख सकता हो, मिट्टीके खिलौने उसके कहीं अच्छे साथी हैं।

होते-होते एक दिन क्या देखता हूं कि 'अहीरगाँव-प्रकाश' अपने प्रतिपक्षी जमींदारको छोड़कर सम्पादकके ही पीछे पड़ गया है। कुछ तो उसने ऐसी भद्दी-भद्दी बातें लिख मारी हैं कि जिन्हें मेरे परिचित मित्र ही, एक-एक करके सभी, हँसते-हँसते मुझे पढ़कर सुना गये। किसी किसीने कहा—"लेखका विषय चाहे जैसा भी हो, पर भाषाकी तो तारीफ करनी ही पड़ेगी।" यानी लेखमें कसके गालियाँ दी गई हैं, यह बात भाषासे साफ मालूम हो जाती है। दिन-भरमें बीसों आदमियोंके मुँह यही एक ही बात मैं सुनता रहा।

मेरे घरके सामने छोटा-सा एक बगीचा था। शामको निहायत दुःखित चित्तसे मैं वहाँ चहलकदमी कर रहा था। चिड़ियोंने अपने-अपने घोंसलोंमें आकर चुहचुहाना बन्द करके अपनी इच्छासे संध्याकी शान्तिमें जब अपनेको पूरी तरह सौंप दिया, तब मैं खूब अच्छी तरह समझ गया कि चिड़ियोंमें रसिक लेखकोंका दल नहीं है, और न सुरुचिके विषयमें उनमें किसी तरहकी बहस ही होती है।

मनमें बार-बार यही सोच रहा था कि इस गालीनामेका क्या

उत्तर दिया जाय? सभ्यताकी भाषामें एक खास दिक्कत यह है कि सब जगह और सब तरहके लोग उसे समझ नहीं पाते। और असभ्यताकी भाषाकी यह शान है कि उसे सब जानते हैं। इसीसे सोच रहा था कि मुझे भी उसी तरहका लट्ठमार जवाब लिखना चाहिए। हार तो हरगिज नहीं मानी जा सकती।

ठीक इसी समय, शामके उस झुटपुटे अँधेरेमें, एक चिर परिचित छोटेसे कंठकी आवाज सुनाई दी; और उसके बाद ही अपने हाथके पास एक कोमल और गरम स्पर्शका अनुभव हुआ। मैं तब इतना उत्तेजित और इतना अनमना हो रहा था कि उस कंठस्वर और उस स्पर्शको जानता हुआ भी तत्काल उसे न जान सका।

पर, उसके दूसरे ही क्षण वह कंठस्वर, हमेशाके पहचाने हुए गलेकी वह मीठी मुलायम और प्यारी आवाज मेरे कानोंमें जाकर खूब जोरोंसे गूँज उठी; और वह अमृतमय मधुर स्पर्श मेरे हाथमें संजीवित हो उठा। लड़कीने आहिस्तेसे मेरे पास आकर मीठी और धीमी आवाजसे मुझे पुकारा—"बापूजी!" कोई जवाब न पाकर उसने मेरा दाहना हाथ लेकर अपने मुलायम गालोंपर फेरा; और फिर वह धीरे-धीरे घरके भीतर जाने लगी।

बहुत दिनोंसे प्रभाने मुझे इस तरह नहीं पुकारा; और न अपनी इच्छासे इस तरह आकर इतना प्यार ही किया। इसीसे आज उस प्यार-भरे स्पर्शसे मेरा हृदय सहसा अत्यन्त व्याकुल और चंचल हो उठा।

कुछ देर बाद घरमें जाकर देखा कि प्रभा अपने बिस्तरपर पड़ी

है। उसे खूब जोरका बुखार है; आँखें कुछ खुलीं और कुछ बन्द हैं। बिना माकी प्यारी बच्ची मेरी दिनके अन्तमें झरे हुए फूलकी तरह मुरझाई-सी पड़ी है।

सिरपर हाथ रखकर देखा, बहुत ही गरम है; जल्दी-जल्दी साँस चल रही है; माथेकी नसोंमें जोरोंसे खून दौड़ रहा है।

मैं समझ गया कि बच्ची मेरी तेज बुखारकी तेज गरमीसे बेसुध-सी होकर अरसेसे प्यासा हृदय लेकर एक बार अपने 'बापूजी'से प्यार करने और प्यार देने बाहर दौड़ी गई थी। उसके 'बापूजी' उस वक्त 'जहीरगाँव'के लिए कड़ेसे कड़ा जवाब लिखनेकी उधेड़-बुनमें लगे हुए थे।

मैं उसके बिलकुल पास जाकर बैठ गया। बच्ची मुंहसे कुछ बोली नहीं, सिर्फ अपने गरम हाथोंके बीचमें मेरा एक हाथ खींच कर अपने गालपर रख लिया; और चुपचाप पड़ी सोती रही।

'जहीरगाँव' और 'अहीरगाँव' के जितने भी अंक रखे थे, उन सबमें मैंने दिआसलाई लगा दी। जवाबमें फिर मैंने कोई लेख नहीं लिखा।

खुद अपनी हार मानकर इतना सुख, इतनी शान्ति, इतनी तसल्ली मुझे कभी नहीं मिली, जितनी कि आज मिली।

जिस दिन प्रभाकी मा मरी थी उस दिन उसे मैंने अपनी गोदमें खींच लिया था; और आज, उसकी सौतेली माकी चितामें आग लगाकर, फिरसे बच्चीको अपनी छातीसे लगाकर मैं घरका घरमें लौट आया।

एक छोटीसी पुरानी कहानी

तो कहानी कहनी ही पड़ेगी ? पर अब तो दम नहीं रहा। अब इस हारे-थके लाचार आदमीको छुट्टी मिलनी चाहिए। यह ओहदा मुझे किसने दिया, यह बताना मुश्किल है। कब तुम लोग धीरे-धीरे एक-एक करके मेरे चारों तरफ आकर जमा हो गये, क्यों तुमलोगोंने मुझपर इतनी मेहरबानी की और क्यों मुझसे इतनी उम्मीदें रखीं, आज यह बताना मेरे लिए आसान नहीं। अलबत्ता, यह तुमलोगोंकी अपनी भलमनसाहत है; और मेरी खुशकिस्मतीसे ही शायद अचानक तुमलोगोंकी मुझपर दया हुई होगी। और मैंने भी, जिससे तुम्हारी वह दया बनी रहे उसकी कोशिशमें कुछ उठा नहीं रखा।

पर सच बात तो यह है कि पाँच आदमियोंकी बिन-कही और बिन-जाहिर रायके माफिक जिस कामका भार मुझपर सौंपा जा चुका है, मैं उसके लायक ही नहीं। कहानी कहनेकी ताकत है या नहीं, इस बातपर मैं विनय या घमंड कुछ भी नहीं करना चाहता। इसकी खास वजह यह है कि विधाताने मुझे एक सुनसान-पसन्द जीवके तौरपर ही बनाया था। उन्होंने मुझे नामवरी पानेके लिए जनताके कामका आदमी बनाकर मेरी देहपर मोटा-कड़ा चमड़ा नहीं दिया। उनका ऐसा विधान था कि 'अगर तुम अपनी जान बचाना चाहो, तो जरा एकान्तमें लोगोंसे अलग जाकर रहना।' मेरा चित्त भी उसी एकान्त

जंगहके लिए हमेशा व्याकुल रहता है। पर भाग्य-बाबा, चाहे मजाक करते हों या गलती, मुझे इस जबरदस्त जन-समाजके बीच तमाम इम्तिहानोंमें पास कराकर अब मुँहपर कपड़ा रखके हँस रहे हैं; मैं उनकी उस हँसीमें शामिल होनेकी कोशिश कर रहा हूं, पर ताज्जुब है कि किसी भी तरह मुझे कामयाबी हासिल नहीं हो रही है।

भाग जाना भी मेरा फर्ज नहीं मालूम होता। फौजके अन्दर ऐसे बहुतसे आदमी होते हैं जो स्वभावसे ही जंगके बजाय संग और शान्तिमें ही ज्यादा मस्त रह सकते थे; लेकिन जब वे अपनी और दूसरोंकी गलतीकी वजहसे जंगके मैदानमें जाकर डट जाते हैं, तब यकायक गुट्ट छोड़कर भाग जाना उनके लिए जेब नहीं देता। भाग्य-देवता खूब सोच-विचारकर सब प्राणियोंको उनके काबिल ठीक काममें नहीं लगाते, मगर फिर भी उनके बताये-हुए कामको खूब अदबके साथ पूरा करना आदमीका फर्ज है।

तुमलोग जरूरत पड़नेपर मेरे पास आते हो; और मेरी इज्जत करनेमें या कमसे कम अदब दिखानेमें कोई कसर नहीं रखते; और जरूरत निकल जानेपर इस नाचीज खिद्मतगारकी इज्जत घटाकर अपनेको जरा 'बड़ा' महसूस करनेकी भी कोशिश करते हो। दुनियामें ऐसा ही होता है, यही स्वाभाविक है; और यही वजह है कि 'जनसाधारण' नामक एक एहसान-फरामोश छन-छनमें बदलनेवाले मन-राजापर उसके खिदमतगार पूरी तरह यकीन नहीं कर पाते। मगर मेहरवानी और नाराजीकी तरफ देखते रहनेसे हमेशा काम नहीं चल सकता। और साथ ही यह

भी सही है कि अपनी नीजी दिलचस्पी या स्वार्थको कतई भूलकर दूसरोंकी भलाईके लिए जब तक काम नहीं किया जाता तब तक उस कामकी कोई वकत नहीं।

लिहाजा, तुमलोग अगर कुछ सुननेकी तबीयतसे आये हो तो मैं कुछ-न-कुछ जरूर सुनाऊँगा। मैं थकावटकी परवाह नहीं करूँगा और न उत्साह पानेकी उम्मीदमें बैठा ही रहूंगा।

पर, आज एक बहुत ही छोटी-सी और इस दुनियाकी बहुत ही पुरानी कहानी याद आ गई है। बहुत ज्यादा दिलचस्प न होनेपर भी, चूँकि उससे तुमलोगोंका गहरा ताल्लुक है इसलिए मुझे इस बातका डर भी नहीं कि सुनते-सुनते तुम ऊब उठोगे और उठके चल दोगे।

सुनो, इस संसारकी एक महानदीके किनारे एक महान यानी बड़ा जबरदस्त जंगल था ; उस जंगलमें और उस नदीके किनारे एक 'कठफोड़' और एक 'चाहा' ये दो पक्षी रहते थे।

जमीनपर जब तक कीड़े-मकोड़े आसानीसे मिलते रहे तब तक अपना-अपना पेट भरकर दोनों खुश तबीयतसे इस दुनियाका गुन गाते हुए खूब पुष्ट होकर मस्त घूमते-फिरते रहे।

बहुत दिनों बाद, एक दिन ऐसा आया कि जमीनमें कीड़े-मकोड़े मिलना मुश्किल हो गया। तब नदी किनारेके 'चाहा' ने पेड़की डालीपर बैठे हुए 'कठफोड़' से कहा—"भाई कठफोड़, बाहरसे बहुतोंको यह जमीन सदा-नई हरी-भरी और खूबसूरत मालूम पड़ती है, लेकिन मैं देखता हूं कि यह शुरूसे आखिर तक पुरानी और नाकाबिल है।"

पेड़का डालीपर बैठे हुए कठफोडूने नदी किनारेके चाहासे कहा—"भाई चाहा, बहुतोंकी निगाहमें यह जंगल खूब हरा-भरा और अरामदे लग रहा है, लेकिन मैं कहता हूं कि यह बिलकुल निस्सार और वाहियात है।"

उसके बाद, दोनों मिलकर अपनी-अपनी बातको सच साबित करनेके लिए कमर कसके तैयार हो गये। चाहा नदीके किनारेके उछल-उछलकर जमीनकी मुलायम मिट्टीमें बार-बार चोंच मार-मारकर दुनियाका बुढ़ापा और नाकाबिलियत दिखाने लगा; और कठफोडू पेड़की कड़ी डालीपर बार-बार चोंचकी चोट करके जंगलका खोखलापन साबित करने लगा।

विधिकी बिड़म्बनासे कभी-न-हारनेवाले ये दोनों ही पक्षी सङ्गीत-विद्यासे नावाकिफ थे। और इसलिए, कोयल जब पृथ्वीपर नवीन वसन्त-समागमकी पंचम स्वरसे घोषणा करने लगी और श्यामा जब जंगलमें नवीन प्रभातोदयका गुण गाने लगी, तब भी ये दोनों भूखे और नाखुश बेजबान परिन्दे आशान्त उत्साहसे अपनी हठ पूरी करनेमें ही लगे रहे।

यह कहानी क्या तुमलोगोंको अच्छी नहीं लगी? अच्छी लगनेकी इसमें कोई बात ही नहीं। लेकिन इसमें सबसे बढ़कर जो गुण है, सबसे बड़ी जो खूबी है, वह यह कि यह थोड़ी-सी देरमें खतम हो जाती है।

और, क्या तुम इस बातको भी न समझ सके कि यह कहानी पुरानी है? इसकी वजह? यही न, कि दुनियाकी बदकिस्मतीसे यह कहानी बहुत पुरानी होनेपर भी हमेशा नई

ही बनी रहती है। बहुत दिनोंसे गुनमेटा कठफोड़ू पृथिवीके इस मजबूत महत्त्वपर ठकठक करके चोंच मारता आ रहा है, और चाहा पृथिवीकी सरस और उपजाऊ मुलायम मिट्टीमें खचखच करके चोंच गड़ाता चला आ रहा है, फिर भी दोनोंके मनके अरमान मन ही में रह गये।

अब क्या तुम यह पूछना चाहते हो कि 'इस कहानीमें सुख दुःखकी ऐसी कौन-सी बात है ?' मैं करता हूं, इसमें दुःखकी बात भी है और सुखकी भी। दुःखकी बात यह है कि जमीन चाहे जितनी ही उदार और जङ्गल चाहे जितना ही महान क्यों न हो, पर, छोटी या ओछी चोंचवाले अपने लायक खाना-पीना न मिलते ही हमेशासे उसे चोट पहुंचाते आये हैं, और शायद पहुंचाते रहेंगे भी। और सुखकी बात यह है कि फिर भी सैकड़ों-हजारों वर्षोंसे जमीन नई और जङ्गल हरे-भरे मौजूद हैं, और शायद रहेंगे भी। फिर इसमें अगर कोई मरे तो डाहके जहरसे फड़फड़ाते हुए ये दो अभागे परिन्दे ही मरेंगे; और मजा यह कि दुनियामें इस बातकी किसीको खबर तक न लगेगी।

इस कहानीका मतलब खाक-धूल कुछ भी तुम्हारी समझमें नहीं आया ? पर इसका मतलब तो ऐसा कुछ मुश्किल नहीं है; शायद कुछ उमर बढ़नेपर समझमें आ जायगा।

कुछ भी हो, चीज तुम्हारे मतलबकी नहीं हुई, इसमें अब मुझे भी कोई शक नहीं रहा।

दुराशा

बहुत दिनोंकी पुरानी बात है। मैं दारजिलिंग गया था। वहाँ जाकर देखा कि बादल और वर्षासे घटाटोप अँधेरा छा रहा है। घरसे बाहर निकलनेकी तबीयत नहीं होती, और घरमें पड़े-पड़े तो और-भी जी ऊबता है।

होटलमें सवेरेका खाना खाकर, पैरोंमें मोटे बूट और सिरसे लेकर पैर तक 'बरसाती' डाटकर, हवाखोरीके लिए निकल पड़ा। रह-रहकर रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी। चारों ओर काले बादलोंके घटाटोपसे ऐसा मालूम होने लगा कि जैसे विधाता हिमालय पहाड़-शुदा सारी दुनियाकी तसवीरको रबरसे घिसकर मिटा देनेकी कोशिश कर रहे हों।

सुनसान कैलकैटा-रोडपर अकेला टहलता हुआ मैं सोच रहा था, बगैर-सहारेके इस बादलोंके राज्यमें अब अच्छा नहीं लग रहा, अब तो अपनी इस रूप-रस-गन्ध-वर्णमयी चित्र-विचित्र धरतीमाताको फिरसे अपनी पाँचों इन्द्रियों द्वारा पाँच तरहसे जकड़कर पकड़ लिया जाय तो अच्छा।

इतनेमें, पास ही कहीं किसी स्त्रीके कंठकी सकरुण रोनेकी गूज-सी सुनाई दी। रोग-शोकसे व्याकुल इस दुनियामें रोनेकी आवाज कोई विचित्र बात नहीं है। और कहीं, और किसी समय होता, तो मुंह फेरकर देखता भी या नहीं, इस बातमें सन्देह है। पर इस असीम मेघ-राज्यके अन्दर वह रोना तमाम

बिलाई-हुई दुनियाके एकमात्र रोनेकी तरह मेरे कानोंमें आकर घुसने लगी। मेरे लिए उसे तुच्छ समझना आसान न रहा।

उस आवाजकी खोजमें मैं आगे बढ़ने लगा। थोड़ी दूर चलकर देखूँ तो, गेरुए कपड़े पहने एक स्त्री, जिसके माथेपर सुनहले रूखे बालोंकी जटा पहाड़की चोटीकी शकल लिये-हुए अपने-आपमें आबद्ध थी, सड़कके किनारे एक छोटी-सी शिलापर बैठी हुई धीमी आवाजमें रो रही है। वह ताजे शोकका विलाप नहीं था, बल्कि बहुत दिनोंसे जमी-हुई खामोश थकान और गहरा गम था, जो आज बादलोंके अँधेरे और सन्नाटेके भारसे चूर-चूर होकर घुमड़ उठा है।

मैं मन-ही-मन सोचने लगा, यह अच्छा रहा, ठीक मानो घर-गढ़न्त कहानीका प्रारम्भ हुआ। मैंने ऐसी उम्मीद कभी नहीं की कि पहाड़की चोटीपर बैठी कोई सन्यासिनी रो रही है और मैं उसे अपनी आँखोंसे देख-सुन रहा हूं।

उस स्त्रीकी जाति क्या है, कुछ अन्दाज न लगा सका। मैंने खूब मुलायम भाषामें पूछा—"कौन हो तुम? क्या हुआ है तुम्हें? रो क्यों रही हो?"

पहले तो उसने कुछ जवाब ही नहीं दिया, बादलोंके भीतरसे आँसुओंसे डबडबाती हुई नजरोंसे उसने मुझे एक बार अच्छी तरह देख-भर लिया।

मैंने फिर कहा—"मुझसे डरो मत, मैं शरीफ आदमी हूं।"

सुनकर वह हँसने लगी; और बड़ी मीठी भाषामें कहने लगी—"बहुत दिनोंसे डर-भयको मैं पास ही नहीं फटकने देती,

हया-शरमको भी धता बता चुकी हूं। बाबूजी, एक जमाना था जब मैं खास जनानखानेमें रहती थी, जहाँ अपना सगा भाई भी बहनके हुक्मके बगैर भीतर नहीं जा सकता था। मगर आज, आज दुनियामें मेरा कोई परदा ही नहीं रहा।"

पहले तो मुझे जरा गुस्सा-सा आया; क्योंकि मेरा ठाठ-बाट सब साहबाने ढंगका होनेपर भी वह अभागिन बिना दुबिधाके मुझे 'बाबूजी' कह बैठी। सोचा, यहींपर अपना उपन्यास खतम करके सिगरेटका धुआँ उड़ाता हुआ साहबी फैशनकी रेलगाड़ीकी तरह जोरसे मिजाजके साथ आगे चल दूं। मगर भीतर जो एक दिलचस्पी थी, भीतरी रहस्य जाननेका जो एक कुतूहल था, उसकी जय हुई। मैंने अपने अन्दर कुछ ऊँचा भाव लाते हुए गरदन टेढ़ी करके पूछा—"मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकता हूं? बताओ, तुम क्या चाहती हो?"

उसने स्थिर दृष्टिसे एक बार मेरे चेहरेकी ओर देखा; और फिर थोड़ी देर बाद संक्षेपमें उत्तर दिया—"मैं बदायूंके नवाब गुलामकादिर खाँकी बेटी हूँ।"

बदायूं किस जगह है, नवाब गुलामकादिर खाँ कौनसे नवाब हैं, और उनकी बेटी किस दुःखसे संन्यासिनीके भेषमें दार्जिलिंगमें कैलकैटा-रोडके किनारे बैठकर रो सकती है, इस बारेमें मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं, और न मैं ऐसी बातोंपर विश्वास ही करता हूं; पर सोचा कि रंगमें भंग डालना ठीक नहीं, क्योंकि कहानीका सिलसिला खूब जमता जा रहा है।

उनकी तारीफका पहला टुकड़ा मेरे कानोंमें पड़ते ही मैंने

उसी वक्त एक लम्बा सलाम ठोंककर कहा—"नवाबजादी साहिबा, बेअदबी माफ हो, मैं पहचान नहीं सका था।"

न पहचाननेके बहुतसे कारण थे। पहला और मुख्य कारण तो यह था कि मैंने उनको पहले कभी देखा ही नहीं; दूसरे, ऐसा कुहरा छाया हुआ था कि अपने हाथ-पैरोंको पहचानना भी मुश्किल था।

बीबी साहबाने भी कुछ खयाल नहीं किया, बल्कि खुश-मिजाजीके साथ दाहने हाथसे एक पत्थरकी ओर इशारा करते हुए मुझे हुक्म दिया—"बैठिये।"

देखा कि नवाबजादी इस संन्यासिनीके रूपमें भी हुक्म देनेकी ताकत रखती हैं। कुहरेसे भींगे और सिवारसे ढके हुए उस कठोर चट्टानपर बैठनेकी इजाजत पाकर मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मुझे कोई ऐसी इज्जत मिल गई हो जिसकी पहले कभी उम्मीद ही नहीं थी। बरसाती लादे निकलते वक्त इतनी जबरदस्त खुशकिस्मतीकी बात मेरे लिए स्वप्नमें भी अगोचर थी कि आज बदायूंके नवाब गुलामकादिर खाँकी बेटी खुद जेबउन्निसा या मेहरउन्निसा या नूरउल्मुल्क साहबा मुझे दार्जिलिंगमें कैलकैटा-रोडके किनारे अपने बिलकुल पास ही आसनपर बैठनेका हक बख्श देंगी।

हालाँ कि हिमालयकी छाती-जैसी सुनसान जगहमें पहाड़ी चट्टानपर बैठकर दो राहगीर नर और नारीकी रहस्यपूर्ण आपबीती कहानी अचानक और हाल-ही-तैयार-हुई कुनकुनी काव्य-कथाके समान सुनाई देगी, पाठकोंके हृदयमें दूरसे आती हुई गिरिकन्दराके झरनेकी झरझर प्रतिध्वनि और कालिदास-रचित 'मेघदूत' और

'कुमार-सम्भव' की विचित्र संगीत-ध्वनि जाग्रत होने लगेगी, फिर भी इतना तो सबको मानना ही पड़ेगा कि बूट और बरसाती पहनकर कैलकैटा-रोडके किनारे वर्षासे भींगी और काईसे गन्दी किसी चट्टानपर संन्यासिनीके भेषमें किसी अनजान शाहजादीके साथ आमने-सामने बैठकर इस तरहकी बातें सुनते हुए भी अपनी शान और शौकतको ज्यों-की-त्यों बनाये रखना मुझ जैसे नये साहबके लिए आसान काम न था। पर उस दिन घनघोर कुहरेसे चारों ओर अँधेरा छा रहा था, संसारके सामने सङ्कोच करनेकी-सी कोई भी बात कहीं भी बाकी नहीं थी। उस अनन्त मेघराज्यमें सिर्फ बदाऊंके नवाब गुलामकादिर खाँकी बेटी और मैं, एक नव-विकसित हिन्दुस्थानी साहब और एक नवाबजादी, प्रलय-अवशेषकी तरह बाकी बचे थे। इस बेमेल सम्मिलनका जबरदस्त मजाक सिर्फ हम ही दोनोंके भाग्यके गोचर था, और किसीके दृष्टिगोचर नहीं था।

मैंने कहा—"नवाबजादी साहबा, आपका ऐसा हाल किसने किया?"

बदाऊँकी नवाबजादीने तकदीर ठोंककर कहा—"कौन यह सब करता है, सो मैं क्या जानूं! इतने बड़े पत्थरके बने ठोस हिमालय पहाड़को मामूली कुहरेसे किसने छिपा रखा है?"

मैंने किसी तरहकी दार्शनिक बहस न छेड़कर उनकी बात मान ली; कहा—"ठीक है, किस्मतकी बात कौन कह सकता है? हमलोग तो कीड़े-मकोड़े हैं।"

बहस छेड़ता, बीबी साहबाको मैं इतनी आसानीसे छुटकारा

न देता; पर अपने मनके भावको मैं भाषामें बाँध न सका। उर्दू भाषाका मुझे जो-कुछ भी थोड़ा-बहुत ज्ञान था, वह कैलकैटा रोडके किनारे बैठकर बदाऊँकी या अन्य कहींकी नवाबजादीके साथ अदृष्टवाद और स्वाधीन-इच्छावादके विषयमें अच्छी तरह बहस करनेके लिए काफी न था।

नवाबजादीने कहा—"मेरी जिन्दगीकी अजीब और दिलचस्प कहानी आज ही खतम हुई है; इजाजत हो तो सुनाऊँ?"

मैंने उतावलीके साथ कहा—"आप भी क्या फरमा रही हैं! आपके लिए इजाजत कैसी! हाँ, अगर आप इनायत फरमावें और मैं सुन सकूं, तो उसे मैं अपनी खुशकिस्मती ही समझूंगा।"

कोई यह न समझें कि मैंने हूबहू यही शब्द कहे थे। हाँ, कहनेकी इच्छा जरूर थी, पर सामर्थ नहीं। नवाबजादी जब बोल रही थीं तो मुझे ऐसा मालूम होता था जैसे ओससे धुले हुए चिकने साँवले रंगके खेतकी सुनहली बालोंके ऊपरसे सवेरेकी धीमी-धीमी मीठी हवा हिलोरें ले रही हो। बात-बातमें ऐसी सरल नम्रता, ऐसी नाजकत, ऐसी खूबसूरती और बातोंका ऐसा लहरोंदार बहाव था कि कहते नहीं बनता। और मैं बहुत ही संक्षेपमें जंगलीकी तरह सीधा जवाब दे रहा था। बातचीतमें ऐसी सरल शिष्टताका ज्ञान मुझे कभी किसी जमानेमें था ही नहीं; नवाबजादीके साथ बात करते वक्त आज ही और यहीं पहले-पहल मैं अपनी कमीकी दीनता कदम-कदमपर महसूस करने लगा।

नवाबजादीने कहा—"मेरे वालिदके खानदानमें दिल्लीके शाही

खानदानका खून मौजूद था ; उसीके बचावके लिए कहीं भी मेरी सगाई पक्की न हो सकी, मेरे लायक कोई शाहजादा ही नहीं मिला। मेरे साथ शादी करनेके इरादेसे लखनऊके नवाबने अपनी तरफसे पैगाम भेजा भी, तो अब्बाजान टालमटोल करने लगे। और इतनेमें, दाँतसे कारतूस काटनेके बारेमें सरकारी फौजमें सरकारके खिलाफ एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ ; और तोपोंके धुआँसे हिन्दुस्तान-भरमें अँधेरा छा गया।"

किसी औरतके मुंहसे, खासकर नवाब-खानदानकी किसी नवाबजादीकी जबानसे मैंने कभी उर्दू भाषा नहीं सुनी। आज सुनकर साफ समझमें आ गया कि यह भाषा उन अमीरोंकी भाषा है जिन्हें ऐश-आरामके सिवा कुछ करना ही नहीं पड़ता ; और यह जिस जमानेकी भाषा है वह जमाना अब नहीं रहा। आज रेलवे और टेलिग्राफसे, काम-काजकी भीड़से और बड़े-बड़े खानदानोंके बिगड़ जानेसे, सब-कुछ मानो छोटा ओछा और अलंकारहीन हो गया है। नवाबजादीकी सिर्फ भाषा सुनकर अंगरेजोंके बसाये हुए उस नये पहाड़ी शहर दार्जिलिंगके घने कुहरेके जालमें भी मानो मेरी मानसिक आँखोंके सामने मुगल बादशाहकी मानसपुरी माया-बलसे जाग उठी ; सफेद संगमरमरके बने हुए आसमान चूमनेवाले बड़े-बड़े महल, सड़कोंपर लम्बी लम्बी पूँछवाले घोड़ोंकी पीठपर कलाबत्तूका कामदार मखमलका साज, हाथियोंकी पीठपर सुनहली झालरदार खूबसूरत हौदे, शहरी लोगोंके सिरपर रंग-बिरंगी बेशकीमती पगड़ियाँ जामेवार और रेशमी तंजेबसे बने हुए जामे पायजामे, कमरबन्दसे लटकती

हुई तलवारें, जरीदार जूतोंके आगेकी टेढ़ी नोंकें; और फुरसतका लम्बा वक्त, ढीली और नीची पोशाकें, हदसे ज्यादा शिष्टाचार, अदब-कायदे !

नवाबजादी कहने लगीं—"हम लोगोंका किला था जमनाके ऐन किनारेपर। हमारी फौजके सिपहसालार थे एक हिन्दू ब्राह्मण। उनका नाम था केशरलाल !"

नवाबजादीने आखिरके 'केशरलाल' शब्दपर नारी-कंठका अपना सारा संगीत मानो एकसाथ एक क्षणमें उँड़ेल दिया। मैं हाथकी छड़ीको जमीनपर रखकर जरा हिल-हिलाकर किस्सा सुननेके लिए चौकन्ना होकर बैठ गया। नबाबजादी कहने लगीं :—

केशरलाल कट्टर हिन्दू थे। मैं रोज खूब सवेरे उठकर अपने महलके झरोखेमेंसे देखा करती कि केशरलाल जमनामें छाती-भर पानीमे घुसकर हाथ जोड़कर उगते हुए सूरजके लिए चारों तरफ घूम-घूमकर जलकी अंजलि दिया करते। उसके बाद भींगे कपड़े पहने घाटपर बैठकर एकाग्र चित्तसे जप करते; और, साफ और मीठे कंठसे भैरों रागमें भजन गाते हुए घर लौटते।

मैं कहनेको मुसलमान लड़की थी, पर कभी मैंने अपने मजहबकी बात नहीं सुनी, और न मजहबी इबादतका कोई कायदा ही मुझे मालूम था। उन दिनों भोग-विलासने, ऐश और आरामने, शराब और साकीने, मय और मयखानेने हमारे मर्दोंको ऐसा गर्क कर रखा था कि दिखाऊ मजहबी शोर और ऊधमके सिवा असल मजहबका उनमें कुछ भी बाकी न था; और इसलिए जनानखानेके रंगमहलोंमें भी कहीं मजहब जिन्दा न था।

विधाताने मेरे मनमें शायद स्वाभाविक धर्म-पिपासा दी थी ; या और-कोई गूढ़ कारण होगा, मैं कह नहीं सकती ; पर हर रोज उस प्रशान्त प्रभातमें हाल-ही-उगे सूरजके अरुण प्रकाशमें निस्तरंग नील जमुनाकी सफेद सीढ़ियोंपर केशरलालके भजन-पूजनके दृश्यसे नींदसे तुरत-जगा-हुआ मेरा हृदय एक अव्यक्त भक्तिकी मधुरतासे भर जाता।

हमेशाके संयत शुद्धाचरणसे ब्राह्मण केशरलालका गोरा छरछरा बदन धूम्र-हीन दीप-शिखाके समान दिखाई देता था ; ब्राह्मणका वह पुण्य-माहात्म्य एक अपूर्व श्रद्धाके भारसे मुझ मुसलमान-तनयाके मूढ़ हृदयको विनम्र कर देता था।

कहते-कहते क्षण-भरके लिए वे रुक गईं। मुझे ऐसा लगा कि मानो उनके चेहरेपर केशरलालके उज्ज्वल ब्राह्मणत्वका तेज प्रकाश छा गया हो ; और उसे वे एक झटकेमें अलग करके तुरत अपने किस्सेका सिलसिला जारी कर देना चाहती हों। केशरलालके प्रसंगमें विशुद्ध संस्कृत शब्दोंका प्रयोग सुनकर मैं दंग रह गया। सोचने लगा, यह कौन बोल रही है, नवाबजादी या संन्यासिनी ? संन्यासिनी कहने लगी :—

मेरी एक हिन्दू बाँदी थी, वह रोज झुककर नमस्कार करके केशरलालकी पदधूलि ले आती थी। उस दृश्यको देखकर मुझे आनन्द भी होता था और ईर्षा भी। क्रिया-कर्म या पर्व त्योहारके दिन वह बाँदी कभी-कभी ब्राह्मण-भोजन कराती और सबको दक्षिणा दिया करती थी। मैं खुद ही अपनी तरफसे उसे रुपये-पैसेसे मदद दिया करती ; और कहती रहती कि तू

केशरलालको न्योता नहीं देगी ? वह दाँतों तले जीभ दबाकर कहती—"केशरलाल महराज किसीका भी अन्न या दान-दक्षिणा नहीं लेते।"

इस तरह प्रत्यक्ष या परोक्षमें केशरलालको किसी प्रकार अपनी भक्ति न दिखा सकनेके कारण मेरा चित्त मानो क्षुधातुर लालची-सा बना रहता। मेरे पुरखोंमेंसे कोई किसी ब्राह्मण कन्याको जबरन ब्याह लाये थे। मैं महलोंके एक कोनेमें बैठी हुई अपनी शिराओंमें उन्हींके पुनीत रक्त-प्रवाहका अनुभव करती और उसी रक्त-सूत्रसे केशरलालके साथ एकताके सम्बन्धकी कल्पना करके कुछ-कुछ तृप्त हो लेती थी।

अपनी हिन्दू दासीसे मैं हिन्दूधर्मके समस्त आचार-व्यवहार, देवी-देवताओंकी आश्चर्यजनक कथा-कहानियाँ, रामायण और महाभारतका सारा-का-सारा अपूर्व इतिहास शंका-समाधानोंके साथ अच्छी तरह सुनती। सुनते-सुनते अपने उस अन्तःपुरके कोनेमें भी हिन्दू-संसारका एक अपूर्व दृश्य मेरे मनके सामने नाचने लगता। मूर्ति और प्रतिमूर्ति, शंख और घंटोंकी ध्वनि, सोनेके कलससे सुशोभित देव-मन्दिर, धूपका सुगन्धित धुआँ, अगुरु-चंदन मिश्रित पुष्पोंकी सुगन्ध, योगी-संन्यासियोंकी अलौकिक शक्ति, ब्राह्मणोंका लोकोत्तर माहात्म्य, मनुष्यके छद्मवेशमें देवताओंकी विचित्र लीला—ये सब मिलकर मेरे सामने एक अति प्राचीन अति-विस्तीर्ण अत्यन्त दूरके अस्वाभाविक मायालोककी सृष्टि कर देते ; और मेरा चित्त मानो घोंसला खोये-हुए पक्षीकी तरह संध्या-रूपी किसी बड़े-भारी पुराने महलकी छोटी-छोटी कोठरियोंमें

उड़ा-उड़ा फिरता। हिन्दू-संसार मेरे उस किशोर-हृदयके लिए बहुत ही दिलचस्प परियोंकी कहानीका भंडार-सा बन गया था।

इतनेमें सरकारके साथ फौजकी लड़ाई छिड़ गई। हमारे छोटेसे बदाऊँके किलेमें भी विद्रोहकी चिनगारियाँ दिखाई देने लगीं।

केशरलालने कहा—"अब तो इन गो-भक्षक गोरोंको आर्यावर्तसे दूर करके, भारतमें राज-पदके लिए फिरसे एक बार हिन्दू मुसलमानोंको पाशा फेंकना पड़ेगा।"

मेरे पिता गुलामकादिर खाँ बड़े होशियार और चतुर आदमी थे, उन्होंने अंग्रेजोंको एक खास रिश्तेदारके सम्बोधनसे सम्बोधित करके कहा—"ये···सब-कुछ कर सकते हैं, हिन्दुस्तानके लोग इनसे उलझकर जीत नहीं सकते। मैं पेटकी आसमें गोदके इस छोटेसे किलेको गँवा नहीं सकता; मैं कम्पनी-सरकारसे न लड़ूंगा।"

उस समय, जब कि हिन्दुस्तानके समस्त हिन्दू-मुसलमानोंका खून खौल रहा था, तब मेरे पिताकी इस बनियों-जैसी होशियारी पर हम सबका दिल उन्हें धिक्कारने लगा। और-तो-और, मेरी बेगम माएँ तक चंचल हो उठीं।

इतनेमें केशरलालने अपनी हथियारोंसे लैस फौजके साथ आकर मेरे वालिदसे कहा—"नवाब साहब, अगर आप हमारी तरफ शामिल नहीं होते, तो कमसे कम तब तकके लिए आप हमारे नजरबन्द हैं जब तक लड़ाई चालू है; और इस किलेकी सारी जिम्मेदारी अबसे मेरे ऊपर है।"

नवाब साहबने कहा—"इतना हंगामा करनेकी क्या जरूरत है; मैं तुम्हारी ही तरफ रहूंगा।"

केशरलालने कहा—"खजानेसे कुछ रुपये देने होंगे।"

वालिद्ने विशेष कुछ नहीं दिया, कहा—"जब जैसी जरूरत होगी, मैं देता रहूंगा।"

चोटीसे लेकर पैरकी उंगलियों तकके मेरे पहननेके जितने भी जेवर थे, सबके सब मैंने एक कपड़ेमें बाँधकर अपनी हिन्दू दासीके जरिये केशरलालके पास भिजवा दिये। उन्होंने मेरी वह भेंट मजूर कर ली। मारे खुशीके बिना-जेवरके मेरे सारे अंग-प्रत्यंग पुलकित हो उठे, शरीर रोमांचित हो उठा।

केशरलाल जंग-लगी बन्दूकोंकी नली और पुरानी तलवार माँज-घिसकर साफ करने लगे। इतनेमें अचानक एक दिन शामको जिलेके कमिश्नर साहब लाल पोशाकवाली गोरी पलटनके साथ आसमानमें धूल उड़ाते हुए किलेमें आ धमके।

मेरे वालिद नवाब साहबने चुपकेसे उन्हें इस बगावतका समाचार भेज दिया था।

पर बदाऊँकी फौजपर केशरलालका ऐसा जबरदस्त प्रभाव था कि वह उनके इशारेपर टूटी बंदूकों और जंग-लगी तलवारोंसे लड़कर जान देनेको तैयार हो गई।

विश्वासघातक नवाब साहबका महल मुझे नरक-सा मालूम होने लगा। क्षोभसे दुःखसे लज्जासे घृणासे मेरी छाती फटने लगी; फिर भी आँखोंसे एक बूँद पानी नहीं निकला। अपने डरपोक भाईकी पोशाक पहनकर, भेष बदलके, मैं महलसे बाहर निकल पड़ी; वहाँ किसीको देखनेकी फुरसत ही नहीं थी।

उस वक्त धूल और बारूदका धुआँ, सैनिकोंकी चीख और

बन्दूकोंकी आवाज सब थम चुकी थी ; जल स्थल और आकाशमें मृत्युकी एक खौफनाक शान्ति छा रही थी। जमुनाके पानीको रक्तरागसे रंगकर सूरज तब अस्त हो चुका था ; और साफ सुथरे आसमानमें उजाले पाखका चाँद अपनी चाँदनी छिटका रहा था।

जंगका मैदान खूनखराबी और मौतके दृश्यसे भयानक दीख रहा था ; और कोई वक्त होता तो रहमसे मेरा कलेजा फटने लगता, पर उस दिन मानो मैं सपनेमें उठकर घूम-फिर रही थी। ढूंढ़ रही थी, कहाँ हैं केशरलाल ? सिर्फ इस एक बातके सिवा और-सब मुझे झूठा मालूम होता था।

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आधी रातको चाँदकी चाँदनीमें मैंने देखा कि जंगके मैदानके पास ही, जमुनाके किनारे, एक आमके बागमें पेड़की छायाके नीचे केशरलाल और उनके खास खिदमदगार देवकीनन्दनकी लाश पड़ी है ! समझ गई कि जबरदस्त वारसे घायल होकर, या तो नौकर मालिकको या मालिक नौकरको, जंगके मैदानसे खतरेसे खाली इस निरापद स्थानपर ले आया है ; और शान्तिके साथ दोनोंने मौतके हाथ अपनेको सौंप दिया है।

पहले तो मैंने अपनी बहुत दिनोंकी भूखी भक्तिको चरितार्थ करके दिलकी प्यास बुझाई, केशरलालके पैरों-तले पकड़कर घुटनों तक लटकते हुए अपने बालोंको खोलकर मैंने बार-बार उससे उनके पैरोंकी धूल पोंछी। अपने गरम माथेपर उनके ठंडे चरण-कमल रखे। उनका चुम्बन करते ही मेरे बहुत दिनोंसे रुके हुए आँसुओंमें बाढ़-सी आ गई।

इतनेमें केशरलालकी देह हिली; और फिर सहसा उनके मुंहसे कराहनेकी दर्द-भरी चीख निकली। मैं चौंक पड़ी; और उनके पैर छोड़ दिये। फिर सुना, मुंदी हुई आँखों और सूखे हुए कंठसे वे बोल उठे—"पानी !"

मैं उसी वक्त दौड़ी गई और जमुनामें अपना दुपट्टा डुबोकर ले आई। कपड़ा निचोड़कर केशरलालके खुले हुए ओठोंमें पानी देने लगी; और, उनकी बाईं आँख और माथेपर जो गहरी चोट लगी थी, उस जगह अपने दुपट्टेका छोर फाड़कर पनपट्टी बाँध दी।

इस तरह कई बार जमुनासे पानी ला-लाकर उनके मुंह और आँखोंपर निचोड़ती रही। धीरे-धीरे उन्हें होश आया। मैंने पूछा—"और पानी लाऊँ ?"

केशरलालने कहा—"कौन हो तुम ?"

मुझसे रहा न गया; बोली—"यह दासी आपकी सेविका है। नवाब गुलामकादिर खाँकी लड़की हूं मैं।"

सोचा था कि केशरलाल मरते-मरते अपनी भक्त सेविकाका पहला और आखिरी परिचय अपने साथ लेते जायेंगे, और इस सुखसे अब मुझे कोई भी वंचित नहीं कर सकता।

मेरा परिचय पाते ही केशरलाल सिंहकी तरह गरजकर बोले—"विश्वासघातक बेईमानकी लड़की! यवन! मरते समय अपने हाथका पानी देकर तूने मेरा धर्म नष्ट कर दिया!"

यह कहकर उन्होंने मेरे माथेपर दाहने हाथसे बड़े जोरका एक तमाचा मारा। मैं बेहोश-सी हो गई; मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया।

तब मैं सोलह वर्षकी थी। पहले ही दिन महलसे बाहर निकली थी। तब तक बाहरके आसमानके लालची सूरजने अपनी गरम किरणोंसे मेरे सुकुमार कपोलोंकी सुर्खी और चेहरेकी लौन-छविको चुराया नहीं था। उस दिन, बाहरकी दुनियामें कदम रखते ही, इस दुनियासे, अपनी दुनियाके देवतासे, यही मुझे पहला आशीर्वाद और पहला प्यार मिला!

इतना कहकर नवाबजादी चुप रह गईं।

अब तक मैं बुझी हुई सिगरेट हाथमें लिये मोह-मुग्ध होकर चित्रमें अंकित मूर्तिकी तरह चुपचाप बैठा कहानी सुन रहा था। कैसी भाषा सुन रहा था, कैसा संगीत सुन रहा था, मालूम नहीं; मेरे मुंहमें जबान नहीं थी। इतनी देर बाद, मुझसे फिर रहा नहीं गया। सहसा मुंहसे निकल पड़ा—"जानवर था!"

नवाबजादी बोल उठीं—"कौन जानवर था! जानवर क्या जान निकलते वक्त मुंहके सामने आई-हुई पानीकी बूँदोंको छोड़ सकता है!"

मैंने शरमिन्दा होकर कहा—"हाँ, बात तो ठीक है। देवता था!"

नवाबजादीने कहा—"कैसा देवता! देवता क्या भक्तकी एकाग्र चित्तसे की हुई सेवाको ठुकरा सकता है?"

मैंने कहा—"हाँ, आप ठीक फरमा रही हैं!" कहकर चुप हो गया।

नवाबजादी कहने लगीं:—

पहले तो मेरे दिलको बहुत ही गहरी चोट पहुंची। ऐसा

मालूम हुआ जैसे सारी दुनिया यकायक चकनाचूर होकर मेरे सिरपर आ पड़ी हो। थोड़ी देरमें होश आनेके बाद मैंने उस कठोर कठिन निष्ठुर निर्विकार पवित्र ब्राह्मणके पैरों-तले दूरसे प्रणाम किया; मन-ही-मन कहा—'हे ब्राह्मण, तुम हीनोंकी सेवा, पराया अन्न, धनीका धन, युवतीका यौवन, रमणीका प्रेम कुछ भी नहीं चाहते, कुछ भी नहीं लेते। तुम स्वतन्त्र हो, स्वाधीन हो, तुम एकाकी हो, निर्लिप्त हो, तुम बहुत दूर हो, तुम्हारे पास जाकर आत्मोत्सर्ग करनेका अधिकार भला मुझे कहाँ !'

नवाबजादीको जमीनपर पड़कर साष्टांग प्रणाम करते देख केशरलालने क्या समझा, मैं नहीं कह सकती, पर उनके चेहरेपर आश्चर्य या और किसी प्रकारका भावान्तर नहीं प्रकट हुआ। उन्होंने शान्तदृष्टिसे एक बार मेरे मुंहकी ओर देखा; उसके बाद धीरे-धीरे उठनेकी कोशिश करने लगे। मैंने विह्वल होकर आश्रय देनेके लिए अपने हाथ पसारे; उन्होंने खामोशीके साथ उसे नामंजूर कर दिया; और बड़ी कठिनाईसे वे धीरे-धीरे जमुनाके घाट तक पहुंचे। वहाँ एक नाव बँधी थी। न कोई पार करनेवाला था और न कोई पार उतरनेवाला। उस नावपर चढ़कर केशरलालने रस्सी खोल दी। देखते-देखते नाव मझधारमें पड़ गई; और थोड़ी देरमें आँखोंसे ओझल हो गई। मेरी इच्छा होने लगी, अपने सम्पूर्ण हृदय-भारको, अपने सम्पूर्ण यौवन और सम्पूर्ण अनादृत भक्ति-भारको लेकर, उस अदृश्य नावकी ओर हाथ जोड़कर, उस निस्तब्ध निशीथमें, चन्द्रमाकी चाँदनीसे पुलकित उस निस्तरंग यमुनामें, असमयमें डंठलसे

गिरी हुई पुष्पमंजरीकी तरह, अपने इस व्यर्थ जीवनको विसर्जन कर दूं, अपनी हस्तीको मिटा दूं।

पर मिटा न सकी। आकाशके चाँदने, जमुना पारके पेड़ोंकी घनी काली कतारने, कालिन्दीके नीले निस्तरंग जलने, दूरके आम्रवनके ऊपर चाँदनीसे जगमगाते हुए हमारे उस किलेकी चोटीने, सभीने एकसाथ मिलकर एकतानसे मौतका ही गम्भीर गीत गाया। उस निशीथमें ग्रह-चन्द्र-ताराओंसे शोभित निस्तब्ध तीन भुवनने मुझे एकस्वरसे मरनेके लिए ही कहा। केवल तरंग-हीन प्रशान्त यमुनाके स्रोतमें बहती-हुई वही एक अदृश्य जीर्ण नाव, उस चाँदनी रातके सौम्य सुन्दर शान्त अनन्त भुवनमोहन मृत्युके पसारे हुए आलिंगन-पाशसे छुड़ाकर, मुझे जीवनके मार्गपर खींच ले चली। और मैं उस मोह-स्वप्नमें मरी हुई-सी जमुनाके किनारे-किनारे, कहीं लम्बी-लम्बी घास तो कहीं सूखी बालू, कहीं ऊबड़खाबड़ जमीन तो कहीं फटे कगारे, कहीं घने जंगल तो कहीं सुनसान बीहड़को पार करती हुई चलने लगी।

इतना कहकर नवाबजादी फिर चुप हो गईं। मैं भी कुछ नहीं बोला।

बहुत देर बाद उन्होंने फिर कहना शुरू किया :—

इसके बादकी, घटनावली बड़ी जटिल है। उसे किस तरह अलग-अलग करके साफ-साफ कहूं, मेरी कुछ समझमें नहीं आता। एक गहन वनके भीतरसे गुजर रही थी। ठीक किस रास्तेसे कब कहाँसे निकली थी, उसे क्या फिरसे ढूँढ़कर बताया

जा सकता है ? कहाँसे शुरू करूं, कहाँ खतम करूं, कितना छोड़ दूँ, कितना रखूँ, सारी कहानीको कैसे किस ढंगसे ऐसा स्पष्ट प्रत्यक्ष बना डालूँ कि जिससे जरा भी कहीं कुछ भी असाध्य असम्भव या अस्वाभाविक न मालूम हो।

लेकिन हाँ, जीवनके इन्हीं कई दिनोंमें मैं समझ गई हूं कि असाध्य असम्भव तो कुछ है ही नहीं। नवाब-खानदानकी महलोंमें बन्द रहनेवाली नवाबजादीके लिए बाहरकी दुनिया बहुत ही दुर्गम हो सकती है, पर है वह काल्पनिक ही ; एक बार अगर बाहर निकल पड़े, तो उसके लिए चलनेका रास्ता हो ही जाता है। वह रास्ता नवाबी रास्ता न सही, पर रास्ता जरूर है। उस रास्तेसे मनुष्य चिरकालसे चलता आ रहा है, वह रास्ता ऊबड़-खाबड़, विचित्र और सीमाहीन है, शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त है ; वह रास्ता सुख-दुःख और विघ्न-बाधाओंसे जटिल है ; पर है वह रास्ता ही।

साधारण मानवके उस साधारण मार्गपर अकेली नवाबजादीकी लम्बी भ्रमण-कहानी सुननेमें सुखदायक न होगी। और हो भी, तो उन बातोंके कहनेके लिए मुझमें जरा भी उत्साह नहीं। सौ बातकी एक बात यह है कि दुःख-कष्ट, आफत-बिपत, मान-अपमान बहुत-कुछ सहना पड़ा है ; फिर भी कल तक जीवन असह्य नहीं हुआ। आतशबाजीकी तरह जितनी जली हूं उतनी ही तेज रफ्तारसे घूमती रही हूं। जब तक तेजीसे घूमती रही तब तक 'जल रही हूं' इस बातका ज्ञान न था। आज सहसा वह परम दुःखकी, वह चरम सुखकी दीपशिखा हवाके एक ही

झोंकेमें बुझ गई; और साथ ही, मैं भी रास्तेके किनारे धूलपर जड़-वस्तुकी तरह गिर गई और मिट्टीमें मिल गई। आज मेरी जीवन-यात्रा, मेरी जिन्दगीका सबसे बड़ा और सबसे प्यारा सफर खतम हो गया ; और मेरी कहानी भी यहीं खतम है।

इतना कहकर नवाबजादी चुप हो गईं। मैंने मन-ही-मन सिर हिलाया—'ऊँ-हुंक्, यहाँ तो किसी तरह खतम हो ही नहीं सकती ?' कुछ देर चुप रहकर मैंने टूटी-फूटी उर्दूमें कहा—"बेदअबी माफ फरवाई जाय, आखिरी दिनकी बात जरा खुलासा करके कहें तो मेरे दिलकी घबराहट कुछ कम हो सकती है।"

नवाबजादी हँस दीं। समझ गया कि मेरी टूटी-फूटी उर्दू काम कर गई। अगर मैं खास उर्दूमें बात कर सकता,तो मेरे सामने उनकी लज्जा दूर न होती ; बल्कि मैं जो उनकी मातृभाषा बहुत कम जानता हूं, यही हम दोनोंके बीच बहुत बड़ा परदा था, यही आबरू थी।

उन्होंने फिर कहना शुरू किया :—

केशरलालकी खबर मुझे लगभग बराबर मिलती रहती थी। लेकिन किसी भी तरह उनसे मेरी भेंट न हो सकी। वे तात्या टोपीके गुट्टमें मिलकर, उस बगावत और क्रान्तिसे छाये-हुए आकाशके नीचे अकस्मात् कभी पश्चिममें तो कभी पूरबमें, कभी दक्षिणमें तो कभी उत्तरमें, बिजलीकी तरह क्षणमें टूट पड़ते और क्षणमें बिला जाते।

मैं तब योगिन बनकर काशीके शिवानन्द स्वामीको अपना धर्म-पिता मानकर उनसे संस्कृत शास्त्रोंका अध्ययन कर रही थी।

भारतवर्षके सब समाचार उनके चरणकमलोंमें आकर इकट्ठे होते थे। मैं परम भक्तिके साथ शास्त्र पढ़ती थी और शंकित चित्तसे हृदयविदारक आकुलताके साथ युद्धके समाचार भी लेती रहती थी।

धीरे-धीरे अंगरेजी सरकारने बगावतकी आगको पैरों-तले कुचलकर बुझा दिया। तब फिर सहसा केशरलालका समाचार मिलना बन्द हो गया। भीषण प्रलय-प्रकाशकी लाल किरणोंके भीतर भारतके दूर-दूरान्तरसे जो वीर मूर्तियाँ क्षण-क्षणमें दिखाई देती थीं, वे सहसा अन्धकारमें विलीन हो गई।

फिर तो मुझसे रहा नहीं गया। गुरुका आश्रय छोड़कर मैं भैरवीके वेशमें निकल पड़ी। अनेक मार्ग, तीर्थ, मठ और मन्दिरोंमें भ्रमण करती रही। कहीं भी केशरलालका पता नहीं चला। दो-एकके मुँहसे, जो उनका नाम जानते थे, सुना कि 'वे या तो लड़ाईमें मारे गये हैं या सरकारने उन्हें फाँसीपर चढ़ा दिया है।' मेरी अन्तरात्माने कहा, 'हरगिज नहीं; केशरलालकी मृत्यु हो ही नहीं सकती। वह ब्राह्मण, वह प्रज्ज्वलित अग्निशिखा कभी बुझ नहीं सकती; मेरी आत्माहुति ग्रहण करनेके लिए अब भी वह कहीं-न-कहीं, किसी दुर्गम निर्जन यज्ञवेदीपर ऊर्ध्व-शिखा होकर जल रही होगी।'

हिन्दू-शास्त्रोंमें लिखा है, ज्ञानके द्वारा तपस्याके द्वारा शूद्र ब्राह्मण हुए हैं। मुसलमान ब्राह्मण हो सकता है या नहीं, इस बातका कोई उल्लेख नहीं। इसका एकमात्र कारण है उस समय मुसलमान यहाँ थे ही नहीं। मैं जानती थी कि केशरलालके साथ

मेरे मिलनमें बहुत बिलम्ब है, कारण उसके पहले मुझे ब्राह्मण होना पड़ेगा। एक-एक करके तीस बरस बीत गये। मैं भीतरसे बाहरसे, आचारमें व्यवहारमें, मन-वचन-कायसे ब्राह्मण हो गई, मेरी उन ब्राह्मण दादीका रक्त निष्पाप-तेजसे मेरे सारे शरीरमें प्रवाहित होने लगा। मैंने मन-ही-मन अपने यौवनारम्भके उस प्रथम ब्राह्मण, अपने यौवन-शेषके उस शेष ब्राह्मण, अपने त्रिभुवनके उस एकमात्र ब्राह्मणके चरणोंमें बिलकुल निःसंकोच होकर अपनेको चढ़ाकर एक अपूर्व दीप्ति प्राप्त कर ली।

युद्ध-विद्रोहके समय केशरलालकी वीरताकी बातें मैंने बहुत सुनी थीं; पर वे मेरे हृदयपर अंकित नहीं हुई। मैंने जो उस दिन उस निःशब्द चाँदनी रातमें निस्तब्ध यमुनाके मध्य-स्रोतमें एक छोटीसी नावपर अकेले केशरलालको बहते जाते देखा था, वही चित्र, वही चित्र अब तक मेरे हृदयमें अंकित था। मैं दिन-रात केवल यही देख रही थी कि वह धीर ब्राह्मण किसी जनहीन अनिर्दिष्ट महारहस्यकी ओर बराबर बढ़ता ही चला जा रहा है। उसका न तो कोई साथी है, न कोई सेवक; किसीकी भी उसे कोई आवश्यकता नहीं है, वह निर्मल आत्म-निमग्न पुरुष अपनेमें आप ही सम्पूर्ण है; आकाशके ग्रह-चन्द्र तारागण नीरव होकर उसे निरीक्षण कर रहे हैं।

इसी समय समाचार मिला कि केशरलाल राज-दंडसे निकलकर नेपालकी तरफ भाग गये हैं। मैं नेपाल पहुंची। वहाँ बहुत दिनों तक रही। मालूम हुआ कि केशरलाल बहुत दिन हुए, नेपाल छोड़कर अन्यत्र कहीं चले गये हैं; उनका कुछ पता नहीं।

उसके बाद अनेक पहाड़ छान डाले, कहीं पता न चला। यह हिन्दुओंका देश नहीं है। यहाँके भूटानी लेपचा लोग म्लेच्छ हैं। इनके आहार-व्यवहार, आचार-विचार कुछ नहीं है। इनके देवता, इनकी पूजार्चनाकी विधि सब भिन्न हैं। बहुत दिनोंकी साधनासे मैंने जो विशुद्ध शुचिता प्राप्त की है, मुझे भय होने लगा कि कहीं उसपर कोई दाग न पड़ जाय, कोई धब्बा न लग जाय। मैं बड़ी कोशिशसे सब तरहके मलिन संस्पर्शोंसे अपनी रक्षा करती हुई चलने लगी। मैं जानती थी कि मेरी नाव किनारे आ पहुंची है, मेरे जीवनका परम पुनीत चरम तीर्थ बहुत ही पास आ गया है।

इसके बाद, और क्या कहूं ? अन्तकी बात तो बहुत ही थोड़ी है। दीआ जब बुझता है तो एक फूंकसे ही बुझ जाता है। उस बातकी अब लम्बी-चौड़ी क्या व्याख्या करूँ ?

अड़तीस वर्ष बाद, इस दार्जिलिंगमें आकर मैंने आज सवेरे केशरलालको देखा है !

वक्ताको यहीं चुप होते देख मैंने उत्सुकताके साथ पूछा—"क्या देखा ?"

नवाबजादीने कहा—"देखा, वृद्ध केशरलाल भूटानी बस्तीमें भूटानी स्त्री और उससे पैदा-हुए अपने नाती-पोतोंके साथ मैले-कुचैले कपड़े पहने खेतीका काम कर रहे हैं !"

क़िस्सा खतम हुआ। मैंने सोचा कि अब कोई सान्त्वनाकी बात कहनी चाहिए। बोला—"अड़तीस वर्ष लगातार जिसे दिन रात प्राणोंके भयसे विजातीयोंके संसर्गमें रहना पड़ा है, वह

अपने आचार-विचारकी किस तरह रक्षा कर सकता है ?"

नवाबजादीने कहा—"मैं क्या यह नहीं समझती ? पर इतने दिनों तक मैं किस मोहकी मारी फिर रही थी ? जिस ब्राह्मणत्वने मेरे किशोर-हृदयको हर लिया था, मैं क्या जानती थी कि वह केवल अभ्यास है, आदत है; सिर्फ संस्कारमात्र है ? मैं समझती थी कि वह धर्म है, अनादि है, अनन्त है, हमेशा एकसा बना रहेगा। ऐसा ही यदि न होता, तो सोलह वर्षकी उम्रमें पहले-पहल पिताके घरसे निकलकर उस चाँदनी रातमें, अपने नव-विकसित सद्य-पुष्पित, भक्ति-वेगसे कम्पित तन-मन-प्राण दानके बदले उस ब्राह्मणके दाहने साथसे मुझे जो दुःसह अपमान मिला था, उसे क्यों मैं गुरुके हाथकी दीक्षा समझकर चुपचाप अवनत मस्तकसे दूनी भक्तिसे शिरोधार्य करती ? हाय ब्राह्मण, तुमने तो अपनी एक आदतके बदले दूसरी आदत अख्तियार कर ली, पर मैं अपने एक यौवन, एक जीवनके बदले दूसरा जीवन दूसरा यौवन कहाँ पाऊँ ?"

इतना कहकर वह तेजीसे उठ खड़ी हुई; बोली—"नमस्कार बाबूजी !"

क्षण-भर बाद ही, मानो अपनी गलतीको सुधारकर फिर बोली—"सलाम बाबू साहब !"

इस मुसलमानी अभिवादनके द्वारा मानो उसने धूलमें मिले हुए उस जीर्ण-शीर्ण ब्राह्मणत्वसे अन्तिम विदा ली; और मेरे कुछ कहनेके पहले ही वह हिमालयके उस भूरे रंगके कुहरेमें बादलकी तरह विलीन हो गई।

मैं कुछ देर तक आँखें मीचे हुए नवाबजादीके जीवनकी सारी घटनाओंको अपने मानसपटपर चित्रित देखने लगा। यमुना-तटके किलेके झरोखेके पास मसनदपर आरामसे बैठी हुई षोड़शी नवाब-नन्दनीको देखा, तीर्थ और मन्दिरोंमें संध्या-आरतीके समय भक्तिसे गद्गद एकाग्र-चित्त तपस्विनीको देखा ; और उसके बाद इस दार्जिलिंगमें कैलकैटा-रोडके किनारे एक प्रवीण प्रौढ़ा रमणीकी कुहरेसे ढकी-हुई भग्न-हृदयके भारसे कातर नैराश्यकी मूर्ति भी देखी। एक सुकुमार रमणी-देहमें ब्राह्मण-मुसलमानकी रक्त-तरंगोंकी विपरीत संघर्ष-जनित विचित्र व्याकुल संगीत-ध्वनि सुन्दर सुसम्पूर्ण प्रांजल-भाषामें विगलित होकर मेरे मस्तिष्कके अन्दर स्पन्दित होने लगी।

आँखें खोलकर देखा तो, सहसा बादल दूर हो गये हैं, स्निग्ध सूर्य-किरणोंसे निर्मल आकाश आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर रहा है। रिक्शामें अंग्रेज महिलाएँ और घोड़ेकी पीठपर अंग्रेज पुरुष सैर करने निकल पड़े हैं। बीच-बीचमें दो-एक भारतीय गलेमें गुलूबन्द लपेटे हुए मेरी ओर सकौतुक कटाक्ष करते हुए चले जा रहे हैं।

मैं जल्दीसे उठ खड़ा हुआ। सूर्यालोकसे आलोकित खुले हुए संसार-दृश्यमें बादलोंसे ढकी-हुई वह कहानी मुझे सच नहीं मालूम हुई। मैं समझता हूं कि मैंने पर्वतके कुहरेके साथ अपनी सिगरेटका काफी धुआँ मिलाकर एक कल्पना-खंड रच डाला था। वह मुसलमान ब्राह्मणी, वह विप्र वीर और यमुना-तटका वह किला, कुछ भी सच नहीं था।

देन-लेन

१

पाँच लड़कोंके बाद जब एक लड़की पैदा हुई, तो मा-बापने बड़े प्यारसे उसका नाम रखा निरुपमा। इस घरानेमें ऐसा शौकीनी नाम इससे पहले कभी सुननेमें नहीं आया। अब तक अकसर देवी-देवताओंके नामपर ही सबके नाम रखे जाते थे; जैसे गणेश, महेश, सीता, पार्वती आदि।

कुछ दिनोंसे निरुपमाके ब्याहकी बात चल रही है। उसके पिता रामसुन्दरने बहुत तलाश किया, पर पसन्दका कोई लड़का ही नहीं मिला। आखिर एक जबरदस्त रायबहादुर रईसके घर उनके इकलौते लड़केकी इन्हें टोह लगी। हालाँ कि रायबहादुरके बाप-दादोंकी जमीन-जायदाद और धन-दौलत बहुत-कुछ खतम हो चुकी थी, पर था वह खानदानी घराना।

लड़केवालोंकी तरफसे दस हजार रुपये नकद और काफीसे ज्यादा दहेजकी माँग पेश हुई। रामसुन्दर बिना कुछ सोचे-समझे ही इस बातपर राजी हो गये। कारण, उन्होंने सोचा कि ऐसे लड़केको किसी भी तरह हाथसे न जाने देना चाहिए।

मगर रुपयोंका इन्तिजाम आखीर दम तक कोशिश करते रहनेपर भी नहीं हुआ तो नहीं ही हुआ। बहुत-कुछ गिरवी रखकर, बेचकर, बहुत कोशिश करनेपर भी छै-सात हजारकी कमी आखिर रह ही गई। और इधर ब्याहके दिन करीब आ पहुँचे।

अन्तमें ब्याहका दिन भी आ गया। बहुत ज्यादा ब्याजपर एकने बाकी रुपया देना कबूल भी किया था, पर वक्तपर वह लापता हो गया। विवाह-मण्डपमें बड़ी-भारी काँय-काँय मच गई; बड़ा क्षोभ फैल गया। रामसुन्दरने रायबहादुरके हाथ जोड़े, खुशामद की; और कहा—"शुभकार्य पूरा हो जाने दीजिये, रुपये मैं जरूर अदा कर दूंगा।"

रायबहादुर बोले—"बगैर रुपया पाये लड़का मण्डपमें नहीं आ सकता।"

इस दुर्घटनासे घरके भीतर औरतोंमें रोना-सा पड़ गया। और इस भारी विपत्तिका जो मूल कारण है वह ब्याहके कपड़े पहने, गहने पहने, माथेपर चन्दन लेपे चुपचाप बैठी है! भावी ससुर-खानदानपर उसकी भक्ति और प्रेम खूब बढ़ रहा हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

इतनेमें एक नई बात पैदा हो गई। लड़का अचानक अपने बापके खिलाफ हो गया। वह अपने बापसे कह बैठा—"खरीद बिक्री और भाव-तावकी बात मैं नहीं समझता; ब्याह करने आया हूं, और ब्याह करके ही घर लौटूँगा।"

बाप बेचारे जो सामने पड़ा उसीसे कहने लगे—"देखा साहब, आजकलके लड़कोंका ढंग!" दो-एक समझदार और प्रवीण पुरुष थे, उन्होंने कहा—"धर्मशास्त्र और न्याय-नीतिकी शिक्षा अब तो बिलकुल रही ही नहीं; इसीका तो यह नतीजा है!"

मौजूदा शिक्षाका जहरीला फल अपनी ही सन्तानमें फला

देख रायबहादुर हतोद्यम होकर बैठ रहे। ब्याह तो किसी कदर हो गया, पर बिना आनन्दके, उदास-मनसे।

ससुराल विदा करते समय निरुपमाको हृदयसे लगाकर बाप आँखोंके आँसू न रोक सके।

निरुपमाने पूछा—"वहाँवाले क्या अब मुझे यहाँ आने नहीं देंगे बापूजी ?"

रामसुन्दरने कहा—"क्यों नहीं आने देंगे, बिटिया ! मैं खुद जाकर तुझे ले आऊँगा।"

२

रामसुन्दर अकसर लड़कीको देखने जाते हैं, पर समधीके घर उनका कोई आदर नहीं। नौकर-चाकर तक उन्हें नीची निगाहसे देखते हैं। अन्तःपुरके बाहर एक अलहदे कमरेमें पाँच मिनटके लिए किसी दिन लड़कीसे मिल पाते, और किसी दिन यों ही बिना मिले ही वापस चले आते।

समधियानेमें ऐसा अपमान तो अब सहा नहीं जाता। रामसुन्दरने तय किया कि 'जैसे हो, रुपया अदा कर ही देना चाहिए।'

पर अभी जितना कर्जका बोझ सिरपर लदा है उसीसे छुटकारा पाना मुश्किल हो रहा है, आगेकी तो बात ही क्या ? गृहस्थीका खर्च भी किसी तरह खींचातानीसे चल रहा है; और कर्जवालोंकी निगाहसे बचनेके लिए तो उन्हें रोज तरह-तरहके हीले-हवाले सोचने पड़ते हैं।

इधर ससुरालमें उठते-बैठते लड़कीको रात-दिन जली-कटी

सुननी पड़ती हैं। मायकेकी निन्दा सुनते-सुनते जब असह्य हो जाता तब वह अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके अकेली बैठी आँसू बहाया करती; और यह उसका रोजका काम हो गया है।

खासकर सासकी घुड़की-झिड़की तो कभी रुकती ही नहीं। अगर कोई कहता कि 'अहा, कैसी शकल है! जरा बहूका मुंह तो देखो!' तो सास झमककर बोल उठती—"होगी नहीं! जैसे घरकी लड़की है शकल भी तो वैसी ही होगी!"

और तो क्या, बहूके खाने-पहनने तककी कोई खबर नहीं लेता। अगर कोई दयावान पड़ोसिन किसी त्रुटिका जिकर करती तो सास कहती—"बस, बहुत है इतना ही!" यानी अगर बाप पूरे रुपये देता तो लड़कीकी पूरी खातिर होती। सभी ऐसा भाव दिखलाते जैसे बहूका यहाँ कुछ हक ही नहीं, यहाँ वह धोखेसे घुस आई हो। शायद लड़कीके इस अनादर और अपमानकी बात उसके बापके कानों तक पहुंच गई। इसीसे रामसुन्दर अन्तमें रहनेका मकान तक बेचनेकी कोशिश करने लगे।

पर अपने लड़कोंसे उन्होंने यह बात छिपा रखी कि वे उन्हें बिना-घर-द्वारके करनेपर तुले हुए हैं। उन्होंने निश्चय किया था कि मकान बेचकर उसीको किरायेपर लेकर रहेंगे; और ऐसी तरकीबसे चलेंगे कि उनके मरनेके पहले लड़कोंको इस बातका पता ही न पड़ पायेगा।

लेकिन, लड़कोंको यह बात मालूम हो गई। सबके सब बापके पास आकर रोने लगे। खासकर बड़े तीनों लड़के विवाहित हैं; और उनमेंसे किसी-किसीके बच्चे भी हैं। उनके विरोधने

बड़ा गम्भीर रूप धारण किया। आखिर मकान बेचना स्थगित रहा। तब रामसुन्दर जगह-जगहसे मोटी ब्याजपर थोड़े थोड़े रुपये कर्ज लेने लगे। अन्तमें ऐसा हुआ कि गृहस्थीका खर्च चलना भी मुश्किल हो गया।

निरुपमा बापका मुंह देखकर सब समझ गई। वृद्ध पिताके सफेद बालोंपर, सूखे चेहरेपर और सदा-संकुचित भावपर गरीबी और दुश्चिन्ताकी छाया साफ-साफ दिखाई देने लगी। लड़कीके सामने जब बाप कसूरवार हो, तब उस कसूरके लिए उसका पछतावा क्या छिपाया जा सकता है? रामसुन्दर समधियानेमें जब इजाजत पाकर क्षण-भरके लिए लड़कीसे मिलते तब उनकी छाती किस कदर फटती, सो तो उनकी हँसीसे ही मालूम हो जाता।

महज पिताके व्यथित हृदयको तसल्ली देनेके लिए कुछ दिनसे निरुपमा मायके जानेको अधीर हो उठी है। बापके सूखे चेहरेको देखकर अब वह दूर नहीं रह सकती। एक दिन बापसे उसने कहा—"बापूजी, मुझे घर ले चलो।"

बापने कहा—"अच्छी बात है।"

पर उनका कोई बस नहीं था; अपनी लड़कीपर बापका जितना कुदरती हक होता है, मानो दहेजके रुपयोंके बदले उसे गिरवी रख देना पड़ा हो। और तो क्या, लड़कीसे मिलनेके लिए भी, बड़े संकोचके साथ, भीख-सी माँगनी पड़ती है; और किसी किसी दिन तो मनाही हो जानेपर फिर दूसरी बार कहनेका मुंह ही नहीं रह जाता।

पर लड़की जब खुद मायके आना चाहत है, तब भला बाप

उसे बिना ले जाये कैसे रह सकता है ? इसीसे, समधीकी सेवामें इस बातकी दरखास्त पेश करनेके पहले, रामसुन्दरने उनके आगे कितनी दीनता, कितना अपमान, कितनी हानि उठाकर तीन हजार रुपये इकट्ठे किये थे, उस इतिहासका छिपा रहना ही अच्छा है।

नोटोंको रूमालमें लपेटकर, अच्छी तरह दुपट्टामें बाँधकर, रामसुन्दर समधीके पास जाकर बैठे। पहले तो मुँहपर हँसी लाकर मुहल्लेकी बात छेड़ी। फिर हरेकृष्णके घर जो बड़ी-भारी चोरी हो गई है, उसका शुरूसे आखिर तक ब्योरा सुनाया। नवीनमाधव और राधामाधव दोनों भाइयोंकी तुलना करके उनकी विद्या-बुद्धि और स्वभावके बारेमें राधामाधवकी प्रशंसा और नवीनमाधवकी निन्दा की। शहरमें एक नई बीमारी फैली है, उसके बारेमें बहुत-सी अजीब-अजीब बातें कहीं; और फिर अन्तमें चद्दरको एक किनारेसे रखकर बातों-ही-बातोंमें बोले—"हें हें, ब्याईजी साहब, आपके रुपये तो अभी बाकी ही हैं। जब आता हूं, तभी सोचता हूं कि कुछ लिये चलूँ, पर चलते वक्त खयाल ही नहीं रहता। अब तो भाई, बूढ़ा हो चला हूं!" इस तरह एक लम्बी भूमिका बाँधते हुए पसलीकी तीन हड्डियोंके समान उन तीन नोटोंको मानो बहुत ही आसानीसे बड़ी लापरवाहीसे निकाला। ले-देकर सिर्फ तीन हजारके नोट देखकर रायबहादुर कहकहा मारकर हँस पड़े; और बोले—"रहने दो, ब्याईजी, इन्हें अपने पास ही रहने दो, मुझे नहीं चाहिए।" एक प्रचलित कहावतका उल्लेख करके उन्होंने कहा कि जरासे-के वास्ते अब क्या वे हाथ गन्दे करें ?

इतनी बात हो जानेके बाद लड़कीको विदा करानेकी बात और किसीके मुँहसे शायद नहीं निकलती। पर रामसुन्दरने सोचा कि रिश्तेदारीका संकोच अब मेरे लिए शोभा नहीं देता। हृदयपर गहरी चोट पहुंचनेके कारण कुछ देर तो वे चुप रहे; फिर अन्तमें उन्होंने नरमाईसे उस बातका जिकर किया। रायबहादुरने, किसी कारणका उल्लेख बगैर किये ही कहा—"विदा तो अभी नहीं हो सकती।"

इतना कहकर वे किसी कामसे बाहर चले गये।

रामसुन्दर लड़कीको मुंह न दिखाकर, काँपते हुए हाथोंसे उन नोटोंको चद्दरके छोरमें बाँधकर, सींधे घर लौट आये। और मन-ही-मन कसम खाई कि 'जब तक रुपये चुकाकर लड़कीपर अपना हक नहीं पा जाता तब तक समधीके घर न जाऊँगा'।

३

बहुत दिन बीत गये। निरुपमा बापको बुलानेके लिए आदमीपर आदमी भेजती रही, पर घरपर कभी वे मिले ही नहीं। बहुत दिनोंसे बापको न देखनेसे भीतर-ही-भीतर वह घुलने लगी। आखिर उसने आदमी भेजना भी बन्द कर दिया; और तब बापके मनमें बड़ी चोट लगी; पर फिर भी वे लड़कीके घर नहीं गये।

कुआरका महीना आया। रामसुन्दरने कहा—"अबकी बार पूजामें लड़कीको जरूर बुलाऊँगा, नहीं तो मैं—"

बड़ी कड़ी प्रतिज्ञा कर बैठे।

दुर्गापूजाकी पंचमीके दिन फिर चद्दरके छोरमें कुछ नोट

बाँधकर रामसुन्दर चलनेकी तैयारी करने लगे। इतनेमें पाँच सालका एक पोता आकर कहने लगा—"बाबा, मेरे लिए गाड़ी खरीदने जा रहे हो ?" बहुत दिनोंसे उसे रबरके पहियोंकी ठेला-गाड़ीपर चढ़कर हवा खानेका शौक हुआ है, पर किसी भी तरह वह पूरा नहीं हो रहा। छै वर्षकी एक पोतीने आकर रोते-रोते कहा—"पूजाके न्योतेमें जानेके लिए मेरे पास एक भी अच्छी धोती नहीं है बाबा !"

रामसुन्दर यह सब जानते थे ; और इस बारेमें उठते-बैठते बहुत-कुछ सोच भी रहे थे। और साथ ही, इस सोचमें भी पड़े हुए थे कि रायबहादुरके घरसे कहीं पूजाका न्योता आ गया तो क्या अपनी बहुओंको वहाँ इसी तरह मामूली गहने पहनकर कृपापात्र दरिद्रकी तरह जाना पड़ेगा ? ये सब बातें सोचते हुए उन्हें बहुत-सी गहरी साँसें लेनी पड़ी हैं ; पर उससे उनके माथेपर सिकुड़न पड़नेके सिवा और-कोई नतीजा नहीं निकला।

गरीबीसे तबाह अपने घरका रोना कानोंमें लिये हुए रामसुन्दरने समधीके घर कदम रखा। आज उनमें संकोचका भाव नहीं था ; दरवान और नौकरोंके मुंहकी ओर देखनेमें पहले जैसे उन्हें झिझक होती थी, अब वह बात नहीं रही ; अब तो ऐसे घुसे जैसे अपने घरमें घुस रहे हों। भीतर जाकर सुना कि रायबहादुर घरमें नहीं हैं, कुछ देर बैठना पड़ेगा। रामसुन्दर मनकी उमंगको न रोक सके, लड़कीसे भेंट की। मारे आनन्दके दोनों आँखोंसे टपटप आँसू गिरने लगे। बाप भी रोये, बेटी भी रोई ; किसीके मुंहसे बात न निकली। इसी तरह कुछ समय

बीत गया। बहुत देर बाद रामसुन्दरने कहा—"अबकी बार तुझे जरूर लिवा ले चलूँगा बिटिया! अब कोई अड़चन नहीं है।"

इतनेमें रामसुन्दरका बड़ा लड़का हरमोहन अपने दोनों छोटे बच्चोंको साथ लेकर सहसा घरमें आ घुसा। पितासे बोला—"बापूजी, तो क्या हमें अब रास्तेका भिखारी बनना पड़ेगा?"

रामसुन्दर सहसा क्रोधमें आकर बोल उठे—"तुमलोगोंके लिए क्या मैं नरकगामी बनूं? मुझे तुमलोग अपने सत्यका पालन नहीं करने दोगे?"

रामसुन्दरने मकान बेच डाला था। और इस बातका भी उन्होंने ठीक और काफी इन्तजाम कर लिया था कि लड़कोंको किसी भी तरह मालूम न पड़े। मगर आश्चर्य है, फिर भी उन्हें मालूम पड़ ही गया! इससे लड़कोंपर उन्हें इतना गुस्सा आया कि आपेसे बाहर हो गये। लड़केके साथ पोता भी था; वह भी उनके दोनों घुटनोंको जोरसे पकड़कर मुंह उठाकर कहने लगा—"बाबा, मेरी गाड़ी?—"

रामसुन्दर सिर झुकाये खड़े रहे, कोई जवाब न पाकर बच्चा निरुपमाके पास दौड़ा गया, बोला—"बुआजी, मुझे एक गाड़ी ले दोगी?" निरुपमा सब समझ गई; बोली—"बापूजी, अगर तुमने एक पैसा भी मेरे ससुरको दिया, तो फिर तुम अपनी बेटीको जिन्दा न देख पाओगे, मैं तुम्हारी देह छूकर कहती हूं!"

"छिः, बेटी, ऐसी नहीं कहते। अगर मैं रुपया न दे सका, तो इसमें तेरे बापकी ही बेइज्जती है; और तेरी भी।"

"बेइज्जती तो रुपया देनेमें है। तुम्हारी लड़कीकी क्या कोई

इज्जत नहीं ? मैं क्या सिर्फ एक रुपयेकी थैली हूं, जब तक रुपया है तभी तक मेरी कीमत है ? नहीं बापूजी, रुपये देकर तुम मेरा अपमान न करो। और फिर, तुम्हारे दामाद तो रुपये चाहते नहीं !"

"तो फिर ये तुझे विदा जो नहीं करेंगे बेटी !"

"न करें तो तुम क्या करोगे, बताओ ? तुम भी फिर विदा कराने न आना।"

रामसुन्दर काँपते हुए हाथोंसे नोट-बँधे दुपट्टेको कँधेपर डालकर फिर चोरकी तरह सबकी निगाह बचाकर घर लौट गये।

परन्तु, यह बात छिपी न रही कि रामसुन्दर रुपये लेकर आये थे और लड़कीके मना कर देनेसे बिना दिये ही चले गये। किसी नटखट दासीने कान लगाकर ये बातें सुन लीं और साससे कह दीं। सुनकर सास मारे गुस्सेके आपेसे बाहर हो गई।

निरुपमाके लिए उसकी ससुराल काँटोंकी शय्या हो उठी। एक तो उसके पति ब्याहके थोड़े दिन बाद ही डिप्टी-मजिस्ट्रेट होकर परदेस चले गये ; दूसरे, इस ख्यालसे कि कहीं संसर्गदोषसे ओछापन न आ जाय, अब उनका उसके मायकेवालोंसे मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया गया।

इस बीचमें निरुपमा एकबार बहुत ज्यादा बीमार पड़ गई थी, पर इसके लिए सिर्फ उसकी सासको ही कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता। खुद वह भी अपने शरीरकी तरफसे बड़ी लापरवाह हो गई थी। कातिकके महीनेमें, जब कि काफी ओस पड़ती है, सारी रात वह सिरहानेका दरवाजा खोलकर सोती और रात-भर उघाड़ी पड़ी रहती थी। खाने-पीनेका भी कोई ठीक नहीं था।

दासियाँ कभी-कभी कलेवा लाना भूल जातीं, तो वह अपने मुंहसे याद भी न दिलाती थी। उसके मनमें यह बात खूब गहराई तक बैठ गई थी कि वह इस घरकी दासी है, मालिक मालिकिनकी कृपापर जिन्दगी बसर कर रही है। लेकिन यह भाव भी उसकी सासको बरदाश्त न था। अगर खाने-पीनेमें बहूकी तरफसे कोई लापरवाही देखतीं, तो झट कह बैठतीं—"नवाबकी बेटी है न! गरीबोंके घरका खाना क्यों रुचने लगा!" कभी कहतीं—"देखो जरा, शकल तो देखो, कैसी हो रही है; दिनों-दिन जैसे जली लकड़ी हो रही हो!"

अन्तमें एक दिन, निरुपमाने साससे बड़े विनयके साथ कहा—"बापूजीको और भाइयोंको एक बार बुलाकर दिखा दो न मा!" सास बोलीं—"बस, सब मायके जानेके ढंग हैं!"

कहनेसे कोई विश्वास न करेगा, जिस दिन शामके वक्त निरुपमाकी साँस चलने लगी, उसी दिन पहले-पहल उसे डाक्टरने देखा; और वही दिन उसके इलाजका आखिरी दिन हुआ।

घरकी बड़ी बहू मरी है, लिहाजा खूब धूमधामके साथ अंत्येष्टि क्रिया की गई! प्रतिमा-विसर्जनके समारोहके सम्बन्धमें जैसी राय-चौधरीकी लोकप्रसिद्ध प्रतिष्ठा है, बड़ी-बहूकी दाहक्रियाके विषयमें भी रायबहादुरकी वैसी ही नामवरी हो गई। ऐसी चन्दनकी लकड़ियोंकी चिता आज तक किसीने देखी ही न थी! फिर श्राद्ध भी ऐसे ठाठ-बाटसे हुआ कि जो रायबहादुरके घर ही सम्भव था। सुनते हैं, इसमें वे कुछ कर्जदार भी हो गये थे।

रामसुन्दरको तसल्ली देते समय, लोग उनकी लड़कीका कैसे

धूमधामके साथ दाह हुआ, उसीका विषद वर्णन करने लगते।

इधर डिप्टी-मजिस्ट्रेटकी चिट्ठी आई कि 'मैंने यहाँ मकान वगैरहका इन्तजाम कर लिया है, अब जल्दी बहूको भेज दो।'

रायबहादुरकी रायबहादुरिनने जवाब दिया कि 'बेटा, तुम्हारे लिए दूसरी एक लड़कीसे सगाई तय कर ली गई है, सो तुम जल्दी छुट्टी लेकर यहाँ चले आओ।'

अबकी बार लड़केके ब्याहमें रायबहादुरको बीस हजार रुपये नकद मिले; और वे हाथों-हाथ वसूल भी हो गये।

कहानी

ज्यों ही बच्चेको बोलना आया, बोला—"कहानी कहो!"

नानीने कहना शुरू किया—"एक था राजाका बेटा, उसका साथी था एक कोतवालका बेटा और एक सौदागरका बेटा—"

पंडितजी गरजकर बोले—"छै दूनी बारह!"

पर उस समय उनसे भी जोरसे गरज रहा था राक्षस—'हाँऊं, माँऊं खाऊं!" पहाड़ेकी गर्जन बच्चेके कानों तक पहुंची ही नहीं। जो हितैषी थे, उन्होंने बच्चेको घरमें बन्द करके समझाया, "छै दूनी बारह, यह सच है; और राजाका बेटा, कोतवालका बेटा, सौदागरका बेटा, सब झूठे हैं, इसलिए—"

लड़केका मन उस समय उस मानसचित्रके समुद्रको पार करके आर-भा आगे बढ़ गया था, जिसका मानचित्रमें पता भी नहीं। 'छ दूनी बारह' पीछे-पीछे पार होना चाहता है, पर वहाँ

पहाड़ेको थाह ही नहीं मिलती। हितैषीने समझा, यह इसकी शरारत है, बेतोंकी चोटसे इसे सुधारना ही ठीक है।

पंडितजीका रंग-ढंग देखकर नानी चुप रहीं।

पर आफत जाना ही नहीं चाहती, एक जाती है तो दूसरी आ खड़ी होती हैं। थोड़ी देरमें कथावाचकने आकर आसन जमा लिया। उन्होंने शुरू कर दी राजकुमारके वनवासकी कथा।

जब राक्षसीकी नाक काटी जा रही थी तब हितैषीने कहा—"इतिहासमें इसका कोई प्रमाण नहीं है; जिसके प्रमाण राह चलते मिलते हैं वह है 'छै दूनी बारह'।"

तब तक वहाँ हनुमान आकाशमें उड़े जा रहे थे; इतने ऊँचे कि इतिहास उनके साथ किसी तरह होड़ ही नहीं कर सकता था।

पाठशालासे स्कूलमें और स्कूलसे कालेजमें लड़केके मनका पुटपाकमें खूब शोधन किया जाने लगा। पर कितना ही क्यों न शोधा जाय, यह बात तो किसी तरह मरना ही नहीं चाहती कि 'कहानी कहो!'

२

इससे मालूम होता है, सिर्फ बचपनमें ही नहीं, सभी उमरोंमें मनुष्य कहानीमें पला-हुआ जीव है। इसीलिए संसार-भरमें, आदमीके घर-घरमें, युग-युगमें, मुँह-जबानी और लिखी-हुई इतनी कहानी जम गई हैं कि उसने आदमीके और-सब संचयोंको मात कर दिया है।

हितैषी एक बात अच्छी तरह विचारकर नहीं देखता, वह यह कि कहानी रचनेका नशा ही सृष्टिकर्ताका सबसे बढ़कर और

अन्तिम नशा है; उसका शोधन बिना किये मनुष्यके शोधन होनेकी आशा ही नहीं की जा सकती।

एक दिन विधाता अपने कारखानेमें आगसे पानी और पानीसे मिट्टी बनानेमें लगे हुए थे। सृष्टि उस समय पसीनेसे लथपथ थी, वाष्प-भारसे व्याकुल। तब धातु और पत्थरोंके पिण्डोंकी चुनाई हो रही थी; चारों तरफ मसाला फैला पड़ा था, और दमादम कुटाई-पिटाई चल रही थी। उस दिन विधाताको देखकर कोई भी यह नहीं समझ सकता था कि उनमें कहीं भी कुछ लड़कपन मौजूद है। उस समयका काण्ड ही ऐसा था, जिसे कहते हैं 'सारवान्'!

उसके बाद न-जाने कब शुरू हुआ प्राणोंका निर्माण। घास जाग उठी, पेड़ उठ खड़े हुए, पशु दौड़ने लगे, चिड़ियाँ उड़ने लगीं। कोई जमीनपर बँधा रहकर आकाशकी ओर अंजलि करके खड़ा हो गया तो कोई छुटकारा पाकर सारी पृथिवीमें अपनेको खूब फैला-फैलाकर चलने लगा; कोई जलकी यवनिकाके तले निःशब्द नाचता-हुआ संसारकी प्रदक्षिणा करनेमें लग गया तो कोई आकाशमें पंख पसारकर सूर्यालोककी वेदी-तले गीतोंका अर्घ्य बनानेमें जुट पड़ा। और तभीसे दिखाई देने लगी विधाताके मनकी चंचलता।

इस तरह बहुत युग बीत गये। सहसा एक दिन, न-जाने क्या सूझी विधाताको, उनके कारखानेमें उनंचास पवनोंकी पुकार हुई। उन सबको मिलाकर विधाताने मनुष्यको गढ़ा। इतने दिन बाद, अब आई कहानी गढ़नेकी पारी। बहुत दिन विज्ञानमें

बीते, शिल्पकलामें बीते; और अब उनका शुरू हुआ साहित्य।

मनुष्यको उन्होंने कहानी-ही-कहानियोंमें विकसित करना शुरू किया। पशु-पक्षीका जीवन है – आहार, निद्रा और सन्तान-पालनमें। मनुष्यका जीवन है – कहानीमें। कितनी वेदनाएँ हैं, कितनी घटनाएँ हैं, सुख-दुःख राग-विराग भले-बुरके कितने घात-प्रतिघात हैं उसमें, इच्छाके साथ इच्छाका, एकके साथ अनेकका, साधनाके साथ स्वभावका, कामनाके साथ घटनाके संघर्षका कितना आवर्तन है! नदी जैसे जलस्रोतकी धारा है, मनुष्य वैसे ही कहानीका प्रवाह है। इसीलिए आपसमें एक दूसरेसे मिलते ही वह पूछता है,—"क्या हुआ जी, क्या खबर है, और सुनाओ?" 'और सुनाओ' के साथ 'और सुनाओ' की इस बुनावटसे ही संसार-भरमें मनुष्यकी कहानी गूँथी जा रही है। इसीका नाम है—जीवनकी कहानी, मनुष्यका इतिहास।

विधाताके रचे इतिहास और मनुष्यकी रची कहानी, इन दोनोंका मेल मनुष्यका संसार है। मनुष्यके लिए सिर्फ अशोक ही की कहानी और अकबर ही के किस्से सच हों, सो बात नहीं; जो राजकुमार सात-समुद्र पार होकर सात राजाकी धन-सम्पदाकी खोजमें चला है वह भी सत्य है; और वह भक्ति-विमुग्ध हनुमानकी वीरताकी कथा भी सत्य है जिसमें हनुमानने गन्धमादन पहाड़ उपाड़ लानेमें दुबिधा तक नहीं की। इस मनुष्यके लिए इतिहासका औरंगजेब जैसा सत्य है, पुराणका दुर्योधन भी वैसा ही सत्य है; किसके प्रमाण अधिक हैं और

किसके कम, इस हिसाब-किताबसे नहीं, बल्कि इस हिसाबसे कि कहानी कौनसी ठीक और अच्छी है। जो अच्छी है वही उसके लिए सबसे बढ़कर सत्य है।

मनुष्य विधाताके साहित्य-लोकमें ही मनुष्य है, इसलिए, न तो वह वस्तुसे गढ़ा गया है, और न तत्त्वसे। हितैषी बहुत प्रयत्न करके भी मनुष्यको यह बात न भुला सका। आखिर हैरान होकर वह हितोपदेशके साथ कहानीकी सन्धि करानेकी कोशिश करने लगा; पर चिरकालके स्वभाव-दोषसे किसी भी तरह मेल नहीं मिला सका। असलमें, इससे कहानी भी टूट जाती है और हितोपदेश भी फिसल जाता है; सिर्फ कूड़ा-करकट जमने लगता है।

रवीन्द्र-साहित्य

अकारादिक्रमिक सूची

[भाग १ से ६ तक]

शीर्षक	भाग-पृष्ठ	शीर्षक	भाग-पृष्ठ
अधिनेता	५ - १	त्याग	३ - २८
अनधिकार-प्रवेश	६ - १३४	दालिया	३ - १२
एक चितवन	२ - १५६	दीवार (मध्यवर्तिनी)	४ - ११६
एक छोटी पुरानी कहानी	३ - ११३	दुराशा	३ - ११८
एक बरसाती कहानी	२ - १२०	दुलहिन (गिन्नी)	२ - १५१
एक रात	२ - १०८	देन-लेन	३ - १४२
कंकाल	१ - ११२	दो बहन (उपन्यास)	१ - ११
कहानी	३ - १५३	दो बहनके विषयमें	१ - ५
कहानीकार (दर्पहरण)	६ - ११६	दृष्टिदान	२ - ३६
काबुलवाला	६ - ५८	निशीथमें	३ - ३९
घाटकी बात	१ - ६७	नील (आपद)	६ - ८५
चन्ना-फू:		पापके खिलाफ (गांधीजी)	५ - १३९
(खोकाबाबूर प्रत्यावर्तन)	२ - ७३	पोस्ट-मास्टर	५ - ३१
छुट्टी	६ - ७२	प्यासा पत्थर	
जन्म-दिन (गांधीजी)	५ - १३२	(क्षुधित पाषाण)	२ - ११
जय-पराजय	५ - १४	प्राण-मन	२ - १
जासूस (डिटेक्टिव)	६ - ४२	फरक (व्यवधान)	५ - ८४
जिन्दा और मुरदा	२ - ८६	फुलवाड़ी (उपन्यास)	४ - ५
जीजी (दीदी)	६ - १२	बदलीका दिन	१ - १४०
ढक्कन (आवरण)	४ - १३९	बाकायदा उपन्यास	४ - १०९
ताराचन्दकी करतूत	५ - ६१	भाई-भाई (दान-प्रतिदान)	६ - ३०

शीर्षक	भाग-पृष्ठ	शीर्षक	भाग-पृष्ठ
मणिहीन	३ - ६१	शुभदृष्टि	६ - १
महात्मा गांधी	५ - १२०	संस्कार	५ - ५
महात्माजीका पुण्यव्रत	५ - १४५	सजा	५ - १०२
महामाया	६ - १०२	सड़ककी बात	३ - ५
'मा मा हिंसीः'	६ - १४५	समाप्ति	५ - ४६
मुक्तिका उपाय	२ - १३५	सम्पत्ति-समर्पण	४ - ६५
रामलालकी बेवकूफी	५ - ४०	सम्पादक	३ - १०४
		सुभा	३ - ६२
राष्ट्रकी पहली पूंजी (आदिम सम्बल)	६ - १४२	सौगात	१ - ६
		स्वर्णमृग	१ - १२४
व्रत-उद्यापन (महात्माजी)	५ - १५२	हिन्दू-मुसलमान	१ - १४२

भागोंकी क्रमिक सूची

पहला भाग

सौगात	६	कंकाल	११२
दो बहन (उपन्यास)	११	स्वर्णमृग	१२४
घाटकी बात	६७	बदलीका दिन	१४०
हिन्दू-मुसलमान	१४२		

दूसरा भाग

प्राण-मन	१	एक रात	१०८
प्यासा पत्थर (क्षुधित पाषाण)	११	एक बरसाती कहानी	१२०
दृष्टिदान	३६	मुक्तिका उपाय	१३५
चन्ना-फूः (लल्लूका लौटाना)	७३	दुलहिन	१५१
जिन्दा और मुरदा	८६	एक चितवन	१५६

तीसरा भाग

सड़ककी बात	५	सुभा	६२
दालिया	१२	सम्पादक	१०४
त्याग	२८	एक छोटी-सी कहानी	११२
निशीथमें	३६	दुराशा	११८
मणिहीन	६१	ट्रेन-लेन	१४२
कहानी	१५३		

चौथा भाग

फुलवाड़ी (उपन्यास)	५	बाकायदा उपन्यास	१०६
सम्पत्ति-समर्पण	९५	दीवार (मध्यवर्तिनी)	११६
ढक्कन (आवरण)	१३६		

पाँचवाँ भाग

अभिनेता (सत्यकी खोजमें)	१	ताराचन्दकी करतूत	६१
संस्कार	५	सजा	१०२
जय-पराजय	१४	महात्मा गान्धी	१२०
पोस्ट-मास्टर	३१	जन्म-दिन (गान्धीजी)	१३२
रामलालकी नेवकूफी	४०	पापके खिलाफ	१३६
समाप्ति	४६	महात्माजीका पुण्यव्रत	१४५
फरक (व्यवधान)	८४	व्रत-उद्यापन	१५२

छठा भाग

शुभदृष्टि	१	नीलू (आपद)	८५
जीजी	१२	महामाया	१०२
भाई-भाई (दान-प्रतिदान)	३०	कहानीकार (दर्पहरण)	११६
जासूस	४२	अनधिकार-प्रवेश	१३४
काबुलवाला	५८	राष्ट्रकी पहली पूंजी	१४२
छुट्टी	७२	'मा मा हिंसीः'	१४५